गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
March-April 2026
Volume 14, Issue 3-4(2)

Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत विमर्श विशेषांक



Issue Editor :
Dr. Vikas Sharma

Issue Co-editor
Dr. Richa Thakur
Dr. Nidhi Verma

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867



संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
www.ginajournal.com



संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14 अंक : 3 – 4, भाग – 2 मार्च – अप्रैल : 2026 आईएसएसएन : 2321 – 8037

विशेषांक संपादक :
डॉ. विकास शर्मा
विशेषांक सह संपादक :
डॉ. ऋचा ठाकुर
डॉ. निधी वर्मा
सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.
प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)
अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
शिओंग छन श्यू, चीन।
डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।
डॉ. सुनीता शर्मा
हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. अनुरुद्ध बायन
मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा जिला बारपेटा, असम।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब
कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)
डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)
डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।
डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर
डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)
डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)
डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।
श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।
डॉ. हेमराज न्यौपाने
काठमाण्डु, नेपाल।
डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।
डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।
डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।
डॉ. मधुबाला
राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।
डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश
डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा
डॉ. राजेश शर्मा
शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राजस्थान)
डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर
डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश
डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।
डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की
डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान/ अभियांत्रिकी/ कृषि/चिकित्सा/ पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा/ मानविकी/कला/ सामाजिक विज्ञान/ पुस्तकालय/शिक्षा/ शारीरिक शिक्षा/ वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. विकास शर्मा	07–07
2.	छत्तीसगढ़ के लोक संगीत का विशिष्ट अध्ययन	भारती बंघेल	08–12
3.	बैले (**ठंससमज**) और संगीत की जुगलबंदी	दीप्ति शर्मा, डॉ. रास बिहारी दास	13–15
4.	विषय-सिनेमा और संगीत का सह-अस्तित्व	डा. इंदिरा. वी	16–19
5.	'ध्वनि-चयन' की दृष्टि से रामवृक्ष बेनीपुरी की कहानियों का शैली वैज्ञानिक विश्लेषण	मधु कुमारी	20–23
6.	संगीत एवं गेय शास्त्र विधा का ऐतिहासिक विवेचन	माधुरी अनंतराव पाटील	24–27
7.	बैले और संगीत की जुगलबंदी : एक शोधात्मक अध्ययन	के. माधवी	28–31
8.	दूरदर्शन पर प्रसारित राष्ट्रवादी गीतों का समाज पर प्रभाव	डॉ. मनीष चौधरी	32–38
9.	काव्य और संगीत का अन्तर्संबंध	डॉ. मंजु पटेल	39–40
10.	स्मृति का इतिहासलेखन : लोकगीत पद्धति के रूप में	डॉ. नेहा प्रधान	41–44
11.	भारतीय संगीत में संतों का योगदान	डॉ. निधि वर्मा	45–49
12.	भारतीय संगीत में रस सिद्धांत का महत्व	सरला साहू	50–52
13.	कथक और तबला संगति (संगीत और नित्य)	सीमा ढींगरा, प्रोफेसर वंदना चौबे	53–55
14.	संगीत शिक्षा और सामाजिककरण की प्रक्रिया	डॉ. स्नेहलता शर्मा	56–59
15.	वैश्विक बाल-संगीत परंपराओं के संदर्भ में हिंदी नर्सरी राइम्स का संगीतात्मक अध्ययन	आर. आर. सौमियाश्री	60–63
16.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत विमर्श : संगीत और विज्ञान/गणित का अंतर्संबंध	तपन कुमार नाथ	64–66
17.	नृत्य और संगीत का अविभाज्य संबंध	डॉ. संतोष कुमार पाठक, वेंकट चिन्ना राव,	67–70

18.	**Music and Religion: A Global Perspective on Sacred Sound and Spiritual Experience**	**Sri. Md. Aasif Hussain**	**71-75**
19.	**Laya and Rhythm : The Dialogue between Nattuvangam and Movement in Bharatanatyam**	**Rajendra Kumar**	**76-80**

सम्पादक की कलम से.....

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत विमर्श

संगीत मानव सभ्यता की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली अभिव्यक्तियों में से एक है। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, भावनाओं, परंपराओं और विचारों के आदान–प्रदान का सशक्त साधन भी है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में संगीत का स्वरूप और प्रभाव पहले से कहीं अधिक व्यापक और बहुआयामी हो गया है। विभिन्न देशों और संस्कृतियों के संगीत के बीच संवाद और समन्वय ने एक नए वैश्विक संगीत विमर्श को जन्म दिया है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत आज सीमाओं से परे जाकर मानवता को जोड़ने का कार्य कर रहा है। इंटरनेट, डिजिटल प्लेटफॉर्म और आधुनिक संचार माध्यमों के कारण दुनिया के किसी भी कोने का संगीत कुछ ही क्षणों में पूरी दुनिया तक पहुँच जाता है। परिणामस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के संगीत में परस्पर प्रभाव दिखाई देने लगा है। पश्चिमी संगीत की धुनों में भारतीय शास्त्रीय रागों की झलक और भारतीय संगीत में पश्चिमी वाद्ययंत्रों का प्रयोग इस सांस्कृतिक आदान–प्रदान का उदाहरण है।

भारतीय संगीत परंपरा, जो राग–रागिनियों और आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण है, वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट पहचान बना चुकी है। योग, ध्यान और आध्यात्मिकता के साथ भारतीय संगीत का संबंध इसे विश्व समुदाय के लिए आकर्षक बनाता है। आज अनेक विदेशी कलाकार भारतीय शास्त्रीय संगीत और लोकसंगीत को सीखने और प्रस्तुत करने में रुचि दिखा रहे हैं। इससे न केवल भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार हो रहा है, बल्कि वैश्विक सांस्कृतिक समन्वय भी सुदृढ़ हो रहा है।

हालाँकि वैश्वीकरण के इस दौर में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। व्यावसायिकता और बाजारवाद के प्रभाव के कारण कई बार संगीत की मौलिकता और पारंपरिक स्वरूप प्रभावित होते हैं। त्वरित लोकप्रियता और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के कारण गहराई और साधना पर आधारित संगीत पीछे छूटने का खतरा भी उत्पन्न होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन बनाए रखा जाए।

वैश्विक संगीत विमर्श का उद्देश्य केवल विभिन्न शैलियों का मेल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विविधता का सम्मान और संरक्षण भी होना चाहिए। यदि संगीत को मानवता की साझा धरोहर मानते हुए संवाद और सहयोग की भावना से आगे बढ़ाया जाए, तो यह विश्व शांति, सांस्कृतिक एकता और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अंततः कहा जा सकता है कि संगीत एक सार्वभौमिक भाषा है, जो शब्दों की सीमाओं से परे जाकर हृदय से हृदय को जोड़ती है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत का यह विमर्श हमें न केवल विभिन्न संस्कृतियों को समझने का अवसर देता है, बल्कि मानवता के साझा स्वर को भी प्रबल बनाता है। इसलिए आवश्यक है कि हम संगीत की इस वैश्विक यात्रा को संवेदनशीलता, सम्मान और रचनात्मकता के साथ आगे बढ़ाएँ।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 8–12
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

छत्तीसगढ़ के लोक संगीत का विशिष्ट अध्ययन

भारती बंघेल
सहायक प्राध्यापक
नवीन शासकीय संगीत महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

छत्तीसगढ़ अपनी विविध संस्कृति एवं परंपराओं के लिए विश्व विख्यात जिसमें छत्तीसगढ़ की लोक संगीत अपनी एक अलग पाचन बनती है। छत्तीसगढ़ में निवास विभिन्न जाती जनजातियों का अपना अपना अलग रीति रिवाज वार संस्कृति है जिसमें उनका गीत संगीत भी उनके संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। छत्तीसगढ़ का कोई भी क्षेत्र हो, चाहे वह मैदानी क्षेत्र हो या पहाड़ी यह के लोगों के रीति रिवाज व संस्कृति में संगीत समाहित होता है। प्राकृति की भौगोलिक दृष्टिकोण के अनुसार यहां के लोगो के रहना सहन के साथ साथ संस्कृति में भी भिन्नता है। जो छत्तीसगढ़ को संस्कृति और लोक कलाओं के दृष्टि से और भी समृद्धि बनता है।

छत्तीसगढ़ की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भौगोलिक परिचय :

1 नवंबर सन 2000 को नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य प्राकृतिक रूप से अत्यंत सुंदर तथा मनोहरी क्षेत्र है छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान औरप वन से भरा राज्य है। छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा भी कहा जाता है। यहां की लगभग 44 प्रतिशत भूमि वनों से ढकी हुई है और यहां की जीवन दायिनी महानदी, शिवनाथ और इंद्रावती जैसी नदियां यहां की सभ्यता को सींचती है। मैदानी इलाकों के लहराते खेत और बस्तर व सरगुजा के घने जंगल यहां के निवासियों की जीवन शैली को निर्धारित करते हैं। यह का भौगोलिक के परिवेश ही यहां की संस्कृति का निर्माण करते हैं जहां प्रकृति और मनुष्य का गहरा अस्तित्व देखने को मिलता हैं। छत्तीसगढ़ राज्य प्राकृतिक रूप से अत्यंत सुंदर तथा मनोहरी रूप है भौगोलिक दृष्टि से यहां की जलवायु बड़ी सुंदर है। यहां गर्मी बरसात और ठंड तीन ऋतु में मुख्य रूप से मानी जाती है। किसी भी क्षेत्र के इतिहास लोक संस्कृति सामाजिक रीति रिवाज लोकगीत एवं लोक नृत्य की जानकारी के लिए उसके भौगोलिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना आवश्यक हैं।

ऐतिहासिक परिचय :

प्राचीन काल से ही छत्तीसगढ़ की जनजीवन में अनेक विशेषता तथा विविधताओं की जानकारी प्राप्त होती हैं। भारत के हृदय स्थल में स्थित छत्तीसगढ़ राज्य न केवल अपनी खनिज संपदा और वन विभाग के लिए जाना जाता है बल्कि यहां अपनी प्राचीन और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए भी विश्वविख्यात है। 1 नवंबर सन

2000 को मध्य प्रदेश से अलग होकर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही दक्षिण कौशल के नाम से जाना जाता था। रामायण और महाभारत काल से जुड़े इसके ऐतिहासिक प्रमाण इसे एक पौराणिक महत्व प्रदान करते हैं। प्राचीन काल में जब मानव पशु की तरह जंगलों नदियों घाटियों में घूमा करता था। कंदमूल एवं अन्य पशु पक्षी शिकार से अपना पेट भरता था। इस कार्य के लिए पत्थरों का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाना किया जाता था जैसे पत्थरों को आपस में रगड़कर आग जलाना।

छत्तीसगढ़ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिचय :

1. सामाजिक परिचय :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने जीवन के सारे कार्य व्यापार समाज में रहकर संपन्न करते हैं। जन्म से लेकर मरणोपरांत चार कंधों में शमशान जाने तक मनुष्य को समाज की आवश्यकता पड़ती है। वह अकेला नहीं रह सकता। इसलिए वह समाज बनाते हैं समाज का निर्माण व्यक्ति की भी आपसी संबंध एवं उनके क्रियाकलापों पर निर्भर होता है। छत्तीसगढ़ की सामाजिक व्यवस्था जाति आधार पर होती है। प्रत्येक जाति का अलग–अलग समाज होता है। ग्रामीण समाज छोटी–मोटी समस्याओं का निराकरण सामाजिक स्तर पर ही कर लेते हैं। गांव में एक मुख्य होता हैं जो सब की समस्याओं का निराकरण करता हैं। जो मुख्य होता है उसे गांव का गोटिया (सियान) कहते हैं। वह सबसे धनी और प्रभावशाली व्यक्ति होता हैं। यहां का सामाजिक जीवन उत्सव है। हरेली, पोला, तीजा, दिवाली (देवरी), छेरछेरा और होली जैसे त्योहार यहां बड़े हर्ष उल्लास के साथ मनाया जाते हैं। यहां के लोगों के स्वभाव में अतिथि को देव तुल्य मानते हुए बड़े आदर सत्कार के साथ मान सम्मान दिया जाता है। कृषि, मजदूरी कर अपना भरण पोषण करते हुए सादा जीवन उच्च विचार यह की ग्रामीण जीवन का मूल मंत्र हैं।

2. सांस्कृतिक परिचय :

छत्तीसगढ़ की संस्कृति को मूल रूप से लोक संस्कृति और जनजाति संस्कृति का संगम कहा जा सकते हैं। यहां की आबादी का एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों (जैसे गोंड, बैंगा, कमार, हलबा, माडिया, मुरीया आदि) है। जिनकी अपनी विशिष्ट परंपराएं भाषा और जीवन शैली है वहीं दूसरी ओर मैदानी क्षेत्र में रहने वाले ग्रामीण समाज की अपनी कृषि आधारित परंपराएं हैं। इन दोनों धाराओं के मिलने से ही छत्तीसगढ़ी की जो संस्कृति बनी है। वह अत्यंत सरल सहज और बाह्यडंबरो से दूर हैं। संस्कृति वह जीवन शैली है जिसे मनुष्य एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में हस्तांतरित करते है। संस्कृति मनुष्य को जीवन जीने की आवश्यकता और उसकी पूर्ति का अलग–अलग ढंग प्राकृतिक पर्यावरण और समाजगत मान्यता पर विकसित ढांचों पर निर्भर करता हैं। अलग–अलग राज्य में अलग–अलग संस्कृति अलग–अलग परंपराएं मनाते हैं। जो निम्न हैं :

बोली :

छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी भाषा बोली जाती हैं। इसके अलावा अलग अलग अंचलों में अलग–अलग बोली, बोली जाती है, जैसे बस्तर अंचल में गोंडी, हल्बी, भत्तरा, दोरला आदि तथा सरगुजा अंचल में कुडुक बोली जाती हैं। छत्तीसगढ़ की केंद्रीय भाषा छत्तीसगढ़ी है किंतु कई प्रांतों से घिरे होने के कारण उनका प्रभाव एवं संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के साथ सीमावर्ती क्षेत्रों की बोली भाषा का प्रभाव भी छत्तीसगढ़ी भाषा में हुआ।

खान पान :

छत्तीसगढ़ का प्रमुख फसल धान है। इसलिए छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा भी कहते हैं। धान से चावल और चावल से भात बनता हैं भात खाने के लिए हरी पत्तियों वाली सब्जी जिसे यहां भाजी (साग) कहा जाता है। छत्तीसगढ़ में अनेक प्रकार की भाजी का उपयोग भोजन के रूप में किया जाता हैं। जैसे सेमी भाजी, मूंगा भाजी, पटवा भाजी, लाल भाजी आदि। हमारे छत्तीसगढ़ में जो रात्रि का भात बच्चा रहता है उसको पानी में डालकर सुबह नमक मिर्च और सब्जी के साथ खाया जाता हैं। इसे बासी कहते हैं। तीज त्यौहार या विशेष आयोजन पर सुहारी (पूड़ी), बरा, ठेठरी खुरमी, भजिया आदि खाद्य सामग्री बनाए जाते हैं।

रहन सहन :

यहां का रहन–सहन जीवन अत्यंत सीधा–साधा और सरल है। प्रायः मकान मिट्टी के बने होते हैं जिस पर गांव में ही बने खपरील से छत लकड़ी बांस के सहारे छाया जाता हैं। घर के दरवाजे बांस से बने होते हैं जिन्हें कपाट कहते हैं। उसे ही लगाकर खेत या मजदूरी करने चले जाते हैं। कुछ लोग पानी की उपलब्धता देख कर ही नदी, तालाब आदि के किनारे मिट्टी का मकान बनाकर निवास करते हैं। इसमें लंबी घास का छत होता है तथा बांस या लकड़ी का साधारण दरवाजा बनाया जाता है। मिट्टी के बर्तन में अनाज रखते हैं और जो संपन्न लोग होते हैं उसके घर पीतल कांसे के बर्तन मिलते हैं। मुख्य रूप से पशु पालन में गाय भैंस, बकरी आदि जानवर पालने का प्रचलन हैं।

वस्त्राभूषण :

छत्तीसगढ़ अंचल में पुरुषों का मुख्य परिधान धोती, कमीज या कुर्ता, अंगरखा, लूंगी आदि हैं। समय परिवर्तन के कारण आज लगभग सभी पुरुष वर्ग के लोग फूल पैंट, शर्ट या जींस पैंट शर्ट टी–शर्ट जैसे आधुनिक वस्त्र धारण करने लगे हैं। महिलाएं स्थानीय बुनकर से बने लुगरा पहनती थी। समय बदलने के साथ अब लाल हरी पीली रंग बिरंगी आकर्षण लुगरा पहनती हैं।

लोक की परिभाषा :

लोक से तात्पर्य संपूर्ण जनमानस से हैं इसमें सामान्य व विशिष्ट का कोई भेद नहीं है यह सब एक हो जाते हैं। यह लोग सामूहिक रूप से अपना जीवन यापन करते हैं। एक दूसरे का सुख–दुःख में साथ देते हैं। लोक वह समुचित जनता है जिसका आधार पोथी पुरान या स्कूली शिक्षा न होकर पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परंपरा को लोक कहते हैं।

लोकगीत :

मनुष्य मनोरंज एवं सुख–दुःख में अपने मानोभावों को व्यक्त करने के लिए स्वर और लय एवं गीत के माध्यम से अपने भाव को अभिव्यक्त करते हैं तो वह लोकगीत कहा जाता है। इस कला को सीखने के लिए किसी विशिष्ट शिक्षा दीक्षा अभ्यास अथवा साधना की आवश्यकता नहीं होती। यहां लोक के मन की भावना होती है जो सामान्य बोली भाषा में होती है जो एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में हस्तांतरित होता रहता है। लोकगीत मनोरंजन का साधन होता हैं। लोकगीत बहुत ही सरल एवं सहज भाव से गाया जाता हैं। लोक गीत के रचयिता अज्ञात होते हैं।

लोक नृत्य :

लोक नृत्य प्रकृति की अनोखी देन हैं। प्रकृति दर्शन का दूसरा नाम ही लोक नृत्य है। लोक नृत्य की उत्पत्ति संभवतः आदिमानव कल से हुआ होगा जब उनके पास भाषा का संधान नहीं रहा होगा। तब वे लोग अपने खुशी को व्यक्त करने के लिए उछल कूद करते रहे होंगे जो विकसित होते हुए विभिन्न लोक नृत्य की पद चाले यथा सैला, झूमर, लहकी, सजनी आदि ही परिलक्षित होती हैं जो प्रमाणित करता है कि लोक नृत्य प्राकृत से प्रेरित है, जिसमें पशुओं के चाल को नृत्य के पैंतरे के रूप में उपयोग में लाया गया होगा साथ ही नदी का लहराव डालियों का झुलना आदि नृत्य में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार प्राकृति के तत्वों को आदिमानव ने ग्रहण किया। लोक नृत्य में पैरों की थिरकन, चंचलता, उछल कूद, गतिमान आदि रूप व्याप्त हैं।

लोक वाद्य :

आमतौर पर समस्त भारतीय वाद्यों का वर्गीकरण चार प्रकार से किया गया हैं : तंत्र वाद्य, सुषिर वाद्य, घन वाद्य, अवनद्ध वाद्य तंत्र वाद्य की विशेषता यह है कि इसमें स्वरों की उत्पत्ति तारों के सहयोग से होती हैं। जैसे की सारंगी, चिकारा, एकतारा, तंबूरा, रुनझु आदि। सुषिर वाद्य के अंतर्गत फूंककर बजाने वाले या हवा द्वारा बजाने वाले वाद्य होते हैं जैसे बिना ,बांसुरी, शहनाई एवं संख आदि। घन वाद्य के अंतर्गत ऐसे वाद्य यंत्र आता है जिसको आपस में टकराकर या चोट कर या आघात करके कर स्वर उत्पन्न करते हैं जैसे थाल, करताल, मजीरा, घुंघरू आदि। अवनद्ध वाद्य के अंतर्गत चमड़े से मड़े हुए वाद्य यंत्र आता हैं। जैसे मंदार, ढोलक, ढोल, खंजिरी, नगाड़ा, टीमकी, ताशा आदि।

लोग जीवन में संगीत का स्थान :

छत्तीसगढ़ के निवासियों के लिए संगीत, नृत्य और वाद्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि संस्कृति और लोक आस्था का केंद्र भी हैं। बल्कि यह उनकी दिनचर्या और जीवन शैली का एक अभिन्न अंग है। खेत में धान की रोपाई करते किसान हो, जंगल में महुआ बिनती महिलाएं हो या फिर देवी–देवताओं की आराधना करते हुए भगत, यह हर अवसर के लिए एक विशिष्ट लोकगीत, लोकनृत्य मौजूद होती है। कठिन परिश्रम और संघर्षमय जीवन के बीच यहां का जनमानस गीतों के माध्यम से अपनी थकान मिटाता है। यहां के लोकगीत में बनावटी पन नहीं है। सीधे हृदय से निकलते हैं और हृदय तक पहुंचाते हैं। यह गीत किसी स्याही की पन्नों पर नहीं लिखे गए हैं बल्कि यह सदियों से मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंप जाते रहे हैं।

निष्कर्ष :

लोक संगीत किसी एक व्यक्ति या वर्ग की रचना ना होकर संपूर्ण समाज की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति है। यह संगीत जनजीवन की भावनाओं संस्कारों परंपरा आश्रम उत्सव ऋतु चक्र और सामाजिक अनुभव की गहराइयों से जुड़ा हुआ है। लोक संगीत में सरलता सहस्त्र और भावनात्मक सच्चाई प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं। लोक संगीत के अंतर्गत लोक गाथा लोककथा लोक नृत्य लोकनाट्य लोकगीत लोक वाद्य आता है। लोक संगीत स्वतंत्र होता है। लोक संगीत लिखित परंपरा ना होकर मौखिक परंपरा है। यह एक विधि से दूसरे पीढ़ी में बढ़ता रहता है। जिससे इसमें स्थानीय बोली संस्कृति जीवन शैली की झलक स्पष्ट रूप

से दिखाई पड़ती है। कहा जा सकता है कि लोक संगीत भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा हैं। जो समाज को एक साथ सूत्र में जोड़े रखने में महत्वपूर्ण योगदान हैं।

संदर्भ सूची :

1. भारत का लोक नृत्य, प्रोफेसर शरीफ मोहम्मद, पृष्ठ क्रमांक 1
2. कुमाऊनी लोकगीत तथा संगीत शास्त्री परिवेश, डॉ. ज्योति तिवारी, पृष्ठ 1, 2
3. छत्तीसगढ़ का लोक संगीत, पं. राम कृष्णा तिवारी, प्रकाशन : मातृकला प्रकाशन, पृष्ठ 27 और 175
4. लोक संस्कृति की वैचारिक यात्रा, डॉ. नत्थू तोड़े, पृष्ठ 297 से 298
5. मध्य प्रदेश के लोक संगीत, शरीफ मोहम्मद।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 13–15
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

बैले (Ballet) और संगीत की जुगलबंदी

दीप्ति शर्मा, शोधार्थी
डॉ. रास बिहारी दास, निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ।

बैले संगीत पर ही निर्भर होता है, संगीत ही बैले का आधार है संगीत के बिना बैले की प्रस्तुति विशिष्ट नहीं होती। बैले नृत्यकार के प्रत्येक भाव को संगीत के माध्यम से रंगमंच पर दर्शाया जाता है, चाहे वह भाव शांत रस से परिपूर्ण हो या रौद्र रस से भरा हुआ हो। शून्यता को छोड़कर बैले नृत्यकार का प्रत्येक भाव संगीत के माध्यम से रंगमंच पर उभारता हुआ दर्शकों तक पहुँचता है। बैले कलाकार के हाथ एवं पैरों का संचालन संगीत के उतार–चढ़ाव के साथ चलता है।

1. भूमिका –

बैले यानि नृत्य–नाटिका भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति की देन है। यह दो शब्दों के मेल से बना है –

नृत्य–नाटिका = नृत्य. नाट्य। 'नाट्य' शब्द 'नृत्य–नाट्य' का घोतक है। जिससे रस की उत्पत्ति होती है। ये नृत्य की सामग्री से ओत–प्रोत है। इसलिए इन्हें 'नृत्य–नाटिका' कहा जाता है।

2. परिभाषा –

नेष्थ्य में प्रस्तुत किये जाने वाले वाद्य, संगीत, गायन के अनुकूल नृत्य–युक्त वाचिकाभिनय रहित रूपक ही 'नृत्य–नाट्य यानि बैले' कहलाता है। अतः नाटक की कोई ऐसी कथा जिसे नृत्य के रूप में प्रस्तुत किया जाए 'नृत्य–नाटिका' कही जाती है।

3. आविष्कृत –

14वीं व 15वीं शताब्दी में यह कला सर्वप्रथम इटली में आविष्कृत हुई। इसके पश्चात् पूरे यूरोप में या कहे पूरे भारत में यह प्रसिद्ध हुई। 16वीं शताब्दी में केरल में कथकली नर्तकों ने शुद्ध भारतीय परंपरा के अनुसार या कहे नाट्य शास्त्रीय परंपरा के अनुसार इसका उद्रण किया। भारतीय नृत्य नाटिकाओं का उद्भव एवं विकास प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, परन्तु अंग्रेजों के समय में पाश्चात्य बैले पद्धति से, रंगमंच व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था, अन्य आकर्षक सामग्री का समावेश, इस प्रथा में हुआ।

इस प्रथा का, 20वीं शताब्दी में पुनरूत्थान, भारत को पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है।

4. रंगमंच पर बैले का उद्भव –

बैले की रंगमंच पर प्रस्तुत का श्रेय निम्न महान् विभूतियों को दिया गया है।

- भारत में वर्तमान शताब्दी में इस परिष्कृत नृत्य–नाटिका (बैले) का श्री गणेश स्व. श्री उदय शंकर जी ने किया। यह स्वयं चित्रकार, गायक एवं नर्तक थे। इन्होंने अल्मोरा में एक 'बैले सेन्टर' की स्थापना की। इनके प्रयत्नों में इनकी पत्नी श्रीमती अमलाशंकर जी ने पूर्णरूपेण सहयोग दिया। इनकी सुप्रसिद्ध नृत्य–नाटिकाएँ 'गौतम बुद्ध', 'शिव–पार्वती' रही है। विदेशी शैली से प्रभावित नृत्य–नाटिकाएं प्रस्तुत करने में इनका योगदान रहा है।
- उदयशंकर जी के पश्चात् श्रीमती गुलवर्धनजी, प्रभात गांगुली जी ने भी भोपाल में इस प्रथा का प्रचार–प्रसार किया।

इनके शिष्य संचिन शंकर जी ने बम्बई में यह कला विख्यात करने में योगदान दिया।

जोधपुर में देवीलाल सांभर जी ने इस कला का प्रचार–प्रसार किया।

- उदयशंकर घराने के अतिरिक्त कलकत्ता में, श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर जी ने नृत्य–नाटिका को प्रसिद्ध करने में अपूर्व कार्य किया है। यह स्वयं एक प्रसिद्ध कवि, गायक, चित्रकार एवं नर्तक रहे। इन्होंने नृत्य–नाटिकाओं की रचना कर शांति निकेतन के माध्यम से इसका प्रचार किया। इनके द्वारा रचित नृत्य नाटिकाएं– श्याम, द प्रिंस आप द डार्क चेंबर चंडालिका। सुप्रसिद्ध है। नृत्य–नाट्य में इन्होंने स्थायित्वता प्रदान की।
- भरतनाट्यम में, रामगोपाल जी ने नृत्य–नाटिका के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है।
- मद्रास में, श्रीमती रूक्मणी देवी जी ने 'कलाक्षेत्र' की स्थापना कर, भरतनाट्यम में नृत्य–नाटिकाओं का निर्माण कर सराहनीय योगदान दिया है।
- केरल में, स्व. कवि वैल्लाथोल जी ने 'केरला कला मंडलम' की स्थापना कर कथकली के माध्यम से नृत्य–नाट्य को सारे भारत में प्रचारित किया है।

5. संगीतमय युक्त बैले –

स्व. मेडम मेनिका जी ने पूर्णरूपेण कथक शैली युक्त नृत्य–नाट्य बैले की संरचना की। इन्होंने बम्बई में एक संस्था स्थापित कर, लड़के–लड़कियों को कथक व नृत्य–नाट्य की शिक्षा दी व गुरूजनों के द्वारा भी दिलवाई।

नृत्य-नाटिकाएं – किसान
गंगावतारण
मदनरति इनकी प्रसिद्ध नृत्य–नाटिकाएं है।

सन् '1926' में इनकी प्रथम नृत्य–नाटिका कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्रम्' बम्बई में प्रस्तुत की गई।

सन् '1936' में जर्मन की राजधानी बर्लिन में यह 'ओलम्पियाड' में नृत्य–नाटिका लेकर प्रस्तुत हुई।

इनके पश्चात् 1957–1958 कथक में खूबसूरत व प्रभावशाली नृत्य–नाटिकाओं को भारत में विख्यात करने का श्रेय दिल्ली 'भारतीय कला केन्द्र' को जाता है। जिसमें स्व. लच्छू महाराज जी, शम्भू महाराज, बिरजू महाराज जी ने इस कला का प्रचार–प्रसार किया। शम्भू महाराज जी की 'कथक थ्रू एजेंस'। लच्छू महाराज जी की रचना 'मालती माधव' प्रसिद्ध नृत्य–नाट्य है। लच्छू महाराज जी ने अंतिम समय में भी चंद्रावली नृत्य–नाट्य का निर्देशन किया।

उपसंहार –

दिल्ली 'कथक केन्द्र' में बैले सेन्टर की स्थापना की गई, जिसके प्रथम निर्देशक पं. बिरजू महाराज जी

थे। इनके निर्देशन में 1960 में शान–ए–अवध, कुमार संभव।

- 1966 में हातो है शबो रोज तमाशा मेरे आगे।
- 1981 लय–परिक्रमा।
- 1982 नायिका।
- 1989 नृत्य केलि।
- 1984 मौनसाक्षी, नृत्य नाटिकाएँ प्रस्तुत की गई।
- गीत–गोविन्द 1977, बाज बहादुर 1975 में की गई।
- 2003–2004 में रोमियो–जूलियट प्रसिद्ध नृत्य्य–नाट्य का निर्देशन इनके द्वारा किया गया।

दिल्ली के विद्यालयों, कथक शिक्षा के केन्द्रों में यह कला आज भी सुप्रसिद्ध है। बड़ौदा में जगदीश गंगानी जी, अहमदाबाद में कुमुदिनि लाखिया, चण्डीगढ़ में श्रीमती शोभा कोसर जी, कलकत्ता में चेतना जलान जी व विजय शंकर जी आज भी इस कला का प्रचार–प्रसार कर रहे है।

सारांश –

बैले व संगीत की जुगलबंदी एक कलात्मक संयोग है। यह संगीतमय व भावमय शारीरिक हलन–चलन के साथ ताल व लय का सुन्दर संगम है। इनके माध्यम से कलाकार अपने भावों को मूर्त रूप देकर दर्शकों तक प्रस्तुत करता है। यह बैले कलाकार के प्रदर्शन को निखारता है। संगीत श्रव्य इन्द्रिय के साथ सम्बद्ध रखता है, बैले दृश्य इन्द्रिय के साथ। इस प्रकार संगीत व बैले की जुगलबंदी दृश्य और श्रव्य इन्द्रियों का अद्‌भूत संगम है।

संदर्भ सूची –

1. आजाद, पं. तीरथराम. कत्थक ज्ञानेश्वरी.
2. ज्योतिष ब्योहार, डॉ. चेतना. कत्थक कल्पद्रूम.
3. Ankuy, Bhardwaj. Ithias Aur Sangeet Ki Jugalbandi.
4. Banerji, Projesh. Indian Ballet Dancing.
5. Chaudhary, S.C. (1985). History of Modern India. Delhi Publication
6. Giri, Ashis. The Rich Tapestry of Indian Classical Dances.
7. Majumdar, R.C. (1983). History of Indian Freedom Movement. Calcutta Publication
8. S., Vijendra. Jugalbandi.
9. Singh, Kushwant. (1981). History of Sikhs. New Delhi Publication
10. Van Zile, Judy. Dance in India : An Annotated Guide to Source Materials.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 16–19
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

विषय–सिनेमा और संगीत का सह–अस्तित्व

डा. इंदिरा. वी
सहायक प्रोफेसर, महाविद्यालय–प्रेसीडेंसी, हेब्बाल, केंपापुरा, बेंगलूरू–२४

भारतीय सिनेमा–भारत एक भव्य एवं खासियतों से भरा देश है। भारत की संस्कृति भारत को रंगबिरंगा एवं आकर्षक बनाती है। भारतीय सिनेमा के वैविध्य विशेषताओं को प्रदर्षित करती है। भारत में रंगमंच की परंपरा प्राचीन काल से ही थी। भारतीय सिनेमा की शुरूवात मूक फिल्मों से हुई। सिनेमा मनोरंजन की नई विधा है। सिनेमा हमारे लिए विस्मय और रोमांचकारी होता है। सबसे पहले दादासाहेब ने राजा हरिशचंद्र के चरित्र को लेकर सिनेमा बनाया। पहले एक टैंट के अंदर बाईस्कोप द्वारा सिनेमा दिखाया गया। दादा साहेब को भारतीय फिल्मों का जनक कहा जाता है।

भारतीय संगीत का इतिहास–इसके तीन भाग है–प्राचीन संगीत, मध्यकाल, आधुनिक काल। प्राचीन काल में चार वेदों की रचना हुई। सामवेदों के मंत्रों का पाठ गायन मे होता है। गायन मे सात स्वर है। हमारे शास्त्रों में हर देवता किसी न किसी वाद्य–यंत्र से जुडे हैं। शिव के पास डमरू हैम नारद मुनि और सरस्वती के पास वीणा है, कृष्ण के पास बांसुरी है। विष्णु के पास शंख है। रावण स्वयं संगीत का विद्वान था। रावण ने रूद्वीणा का अविष्कार किया था। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे संगीत की अच्छी उन्नति हुई। रियासतों में संगीत्कारों को अच्छी तनख्वाह मिलती थी। मध्यकाल में कुछ ग्रंथ संगीत मकरंद, गीत–गोविंद और सगीत रत्नाकर हैं। अकबर के शासनकाल में संगीत की अच्छी उन्नति हुई। अकबर के दरबार में ३६ संगीतग्य थे। तानसेन ने कई रागों की रचना की। जिसमें राग दरबारी, कनाडा, सारंग और मल्हार है। आधुनिक काल में फ्रांसिसी, पुर्तगाली और अंग्रेज आए। इस दौर में संगीत की उपेक्षा हुई। १६०० के बाद फिर से संगीत का प्रचार शुरू हुआ। इसका श्रेय पंडित विष्णु दिगंबर और विष्णु नारायण को जाता है। आज संगीत अपने शिखर पर है। आकाशवाणी और सिनेमा द्वारा संगीत का काफी प्रचार हुआ।

गीत की परिभाषा एवं प्रकार–गीत वह साहित्यिकत रचना है, जिसमें अनुभूति, विचार एवं भावों को संगीत की मदद में अभिव्यक्ति की जाती है। गीत के शब्द सार्थक और निरथक दोनों होते है। भजन, गीत और ठुमरी तथा खैय्याल के शब्द सार्थक होते है। तरनों के शब्द तोम तनन देरे नोम निरथक होते है। गीतों की रचना विभिन्न छंदों एवं रागो में की जाती है। गीतों के अव्याय होते है–स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग। स्थाई गीत के मुख्य विषय को प्रस्तुत करती है और अंतरा विकसित रूप को। इल्मी गीत भारतीय सिनेमा की अभिन्न अंग

है, जो कहानी कहने के लिए अहम भूमिका निभाती है।

फिल्मी गीतों की शुरूआत –

भारत में फिल्मी गीतों की शुरूआत १९३१ में आई। पहली बोलती फिल्म आलम–आरा से हुई और गाना था 'दर्द खुदा के नाम पर प्यारो' था। १९५० से १९७० के दौर को हम फिल्म संगीत का सुनहरा दौर कह सकते है। जे.जे. मोहन के द्वारा लिखित इंद्रसभा में ज्यादा से ज्यादा फिल्मी गानें हैं। इसमें ७२ गानें है। 'हम आपके है कौन' इस फिल्म में १४ गानें है। यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित फिल्म सिल्सिला में १२ गाने हैं। १९९९ में सुभाष घई के द्वारा निर्मित ताल फिल्म में १२ गाने है। हम दिल दे चुके सनम इस फिल्म में ११ गाने है। २०१५ की फिल्म बाजीराव मस्तानी में १० गाने है। संजय लीला बंसाली द्वारा न्रिमित देवराज फिल्म में १० गीत है। पहला फिल्मी गीत गौहर जान के द्वारा १९३१ में गाया गया थ। इन्हें संगीत की ठुमरी रानी माना जाता है। फिल्मी गीतों के बोल अक्सर प्रतिष्ठित साहित्यकारों एवं कवियों द्वारा लिखे जाते है।

गीतों का महत्व –

संगीत का महत्व जीवन में बहुत है। मन को खुश रखने के लिए कुछ चीजें अत्यंत आवश्यक है जैसे स्वास्थ्य, चौन की जिंदगी और प्रेम। संगीत मन को स्वस्थ रखने का शक्तिशाली माध्यम है। इससे हमें सकारात्मक ऊर्जा मिलती है। संगीत वह शब्द है जो स्वर और लय के द्वारा भावों को प्रकट कर सकता है। लोक के लिए रचित गीत को हम लोक गीत कहते हैं। भोजपुरी गीतों में सामान्य लोगों के जीवन का वर्णन होता है।गीत का प्रबल प्रभाव शरीर और मन को उभयपक्षी शक्ति प्रदान करने का होता है। इससे मानसिक रोगों की चिकित्सा होती है। गीत के सुर और लय से मीरा, तुलसी, सूर और कबीर जैसे महानुभावों ने भक्त–शिरोमणी की उपाधि प्राप्त की है।

गीतों का लाभ –

संगीत सिर्फ मनोरंजन ही नहीं करता, बल्कि इससे कई सारे फायदे होते हैं। आजकल के तनाव में गीत गाने से दिमाग रिलेक्स होता है। दिमाग की नसों को आराम मिलता है। म्यूजिक थेरेपी इसे ही कहते है। दिमाग के डोपोमाइन का स्तर बढ्ता है। दर्द से पीड़ित व्यक्ति का दर्द कम होता है। फेफेडे मजबूत होते है। गंभीर सांस की बीमारी में राहत मिलती है। मेमोरी लास कम होती है। ३० मिनट तक गाने सुनने से दिल की क्षमता बढ्ती है। बेकार के विचारों से आराम मिलता है। अच्छी नींद आती है। गीत बच्चों के मस्तिष्क के कई हिस्सों को विकसित करती है। इससे जीभ, कंठ, वक्ष और हृदय की क्षमता का विकास होता है।

भारतीय सिनेमा और हिंदी गीत –

फिल्मी गाने फिल्म से पहले रिलीज होते है। और फिल्म को मश्हूर बनाने मे मुख्य भूमिका निभाते है। गीतों मे शब्दों का प्रयोग भावनाओं, विचारों और कहानियों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। फिल्मी संगीत में विविध शैलिया होती हैं। फिल्मी, पाप, रोमांटिक, उर्जावान, आईटम इत्यादि। भारतीय फिल्मों में लोकगीतों, फिल्मी पाप और शास्त्रीय संगीत शामिल है। संगीत की दो परंपरा है–कर्नाटक और हिदुस्तानी।

फिल्मी गीतों में देश प्रेम से संबंधित, शहीदों से संबंधित, त्योहारों से संबंधित, भक्ति से संबंधित, छात्रों से

संबंधित, प्रेम से संबंधित, पर्यावरण से संबंधित, मौसम से संबंधित, मनोबल से संबद्ध, मानवीय मूल्यों से संबंधित, मजाक से संबंधित, मेहनत करने से संबंधित अनेक गाने होते है जिनके बोल अत्यंत ही अर्थपूर्ण और भावपूर्ण होते है।

'उडि–उडि जाए, उडि उडि जाए, दिल की पतंग देखो उडि जाए' ये गाना संक्रांति के पावन अवसर पर पतंग उड़ाए जाने वाली परंपरा पर आधारित है। शिव–रात्री से संबंद्ध अनेक शिवजी के गाने है। होली हमारी रंग–भरी संस्कृति को प्रदर्शित करती है। 'रंग बरसे भीगे चुनर वाली रंग बरसे' यह गाना होली के त्योहार को और भी रंग से भर देता है। हर त्योहार के पहले गणेश जी की पूजा होती है। गणेशजी को समर्पित देवा दी देवा गणपति देवा गणेश जी को समर्पित बहुत ही प्रसिद्ध गाना है। 'चलो बुलावा आया है, माता ने बुलाया है" हर मनुष्य को मां के चरणो में समर्पित हो जाने की उमंग से भर देता है।

देश–प्रेम हर नागरिक में होता है। देशानुराग देश के विकास के लिए परम आवश्यक है।' मेरे देश की धरती सोना उगले–उगले हीरे मोती' इस गाने में भारत की संपन्नता का उल्लेख है। 'भारत हमको जान से प्यारा है, सबसे प्यारा गुलिस्तान हमारा है' यह गाना विश्व के सामने भारत के प्रति निष्ठा को सामने लाता है। 'हिद देश के निवासी सभी जन एक है' यह गाना भारत की अनेकता में एकता को दिखाती है। 'छोड़ो कल की बाते, कल की बात पुराने, नए दौर पे लिखेंगे अपनी नई कहानी' यह गीत हमारे भविष्य के प्रति आशावादी भावना को हमारे सामने रखती है।

देश के संरक्षक हमारे वीर सेनानियों से जुड़े अनेक गाने है। एसे अनेक वीर सेनानी हैं, जिन्होने अपनी जान को न्यौछावर कर हमें आजादी दिलाई। एसे सेनानियों को श्रद्धांजली देते हुए अनेक फिल्म हैं। बोर्डर फिल्म का गाना 'संदेशे आते हैं, हमें तड़पाते है, चिट्ठी आती है, कि पूछे जाती है कि घर कब आओगे' यह गाना हमें यह बताता है कि किस तरह से वीर जवानों के घरवाले इन सेनानियों की वापसी का रास्ता देखते रहते है।

भक्ति फिल्मी गानों की बात ही अलग है, इसे हर इंसान गाते हुए अपनी भगवद–भक्ति को व्यक्त करता है। रामजी की निकली सवारी, रामजी की लीला है न्यारी' यह गीत भगवान रामचंद्रजी का अयोध्या वापसी एवं उल्लास को प्रकट करता है। जन्माष्टमी के दिन बजने वाला यह गाना' मच गया शोर सारी नगरी रे, आया बिरज का बांका संभाल तेरी गगरी रे' यह गीत बांके–बिहारी की लीला को व्यक्त करता है।

प्रेम की दुनिया से बढ़कर कुछ नहीं। प्रेमियों की प्रेमी दुनिया में जीने की इच्छा को और भी प्रबल बना देता है। प्रेम की भावना से जुडी ऐसी कोई भी फिल्म नहीं है, जिसमे प्यार के गीत न हो। 'हम तुम दोनो जब मिल हाएंगे, एक नया इतिहास बनांएगे' प्रिम की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। प्रेम का दूसरा पहलू विरह है। 'याद आ रही है, याद आने से तेरे जाने से जान जा रही है' यह गाना यह दिखाता है कि किस तरह प्रेम के विरह में नायक और नायिका जीना दूभर हो गया।

उपसंहार –

हर इंसान का जीवन में एक मकसद होता है। उसे जीते जी बहुत सारी जिम्मेदारिया निभानी पड़ती है। बचपन में पढाई, यौवन में नौकरी, प्रौढावस्था मे बच्चों एवं माता–पिता की जिम्मेदारी। दुनिया में उसे पूरी जिंदगी

जिम्मेदारियों के बोझ के तले रहना पड़ता है। ऐसे में इंसान को ऐसे उर्जा की आवश्यकता होती है। जो उसे थकान से परे रखे। इंसान को मनोरंजन की परम आवश्यकता होती है। जैसे कही घूमने जाना या नियमित जिंदगी से परे क्रिया–कलाप। फिल्म एक ऐसा माध्यम है जो इंसान को कुछ समय के लिए कल्पनिक दुनिया में ले जाता है और उसे खुशी प्रदान करता है। फिल्मी गीत इंसान में एक नई जान डाल देता है। तनाव के समय अगर वह कुछ गुनगुनाते तो उसे अत्यंत खुशी मिलती है। इस तरह फिल्म और फिल्मी गीत हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

सहायक ग्रंथ सूची :

१. सामयिक हिंदी निबंध, राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, एम.आई पब्लिकेशन।

२. आधुनिक निबंध, संजय गुप्ता–कास्मास बुक हौस पब्लिकेशन।

३. आधुनिक हिंदी निबंध, ओ.पी. मिश्र–बोहरा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स।

४. नए निबंध–श्याम जी गोकुल वर्मा–विध्याविहार।

५. हिंदी निबंध सौरभ–श्याम चंद्र कपूर–ग्रंथ अकादमी।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 20–23
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

'ध्वनि–चयन' की दृष्टि से रामवृक्ष बेनीपुरी की कहानियों का शैली वैज्ञानिक विश्लेषण

मधु कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

शैली–विज्ञान दो शब्दों को मिलाकर बनता है, शैली–विज्ञान अर्थात् शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैली विज्ञान कहते हैं। शैली विज्ञान की परिभाषा रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में इस प्रकार है –"शैली विज्ञान भी साहित्य को समझने–समझाने की एक दृष्टि है जो शैली के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना (स्टक्चर) और गठन (टेक्सचर) पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अंतनिर्हित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है।"[1] भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। भाषा विज्ञान में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया जाता है जबकि शैली विज्ञान में भाषिक विश्लेषण के साथ–साथ उसके प्रभाव–पक्ष का भी अध्ययन किया जाता है। इसी के साथ कथ्य की बारीकियों से भाषिक संरचना के ध्वनीय, शब्दीय, रुपीय, वाक्यीय और अर्थिय पक्षों को जोड़ता है। के पांच तत्व है – चयन, विचलन, समानांतरता, अप्रस्तुत–विधान, ध्वनीय शैली विज्ञान। पहला तत्व का 'चयन' चयन का अर्थ का 'चुनना'। शैली विज्ञान में चयन से अभिप्राय है – "भाषा की एकाधिक इकाइयों में से किसी एक का चुनाव करना अर्थात् किसी भाषा में प्राप्त एकाधिक इकाइयों या व्यवस्थाओं में, अभिव्यक्ति के लिए किसी एक को चुन लेना।"[2] रचनाकार भाषा में ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य एवं अर्थ के स्तर पर चयन करता है।

संगीत और शैली विज्ञान का संबंध अभिव्यक्ति के माध्यम और चुनावों के विज्ञान से है। शैली विज्ञान मुख्यतः शब्द–भाषा पर केन्द्रित है, लेकिन उसके सिद्धांत ध्वनि–कला पर भी लागू होते हैं। दोनों में शैली व्यक्ति, युग, संस्कृति और भाव की पहचान बनाती है। इसलिए संगीत को ध्वनि की 'भाषा' कहकर उसके शैलीगत विश्लेषण को संगीत–शैली विज्ञान के रूप में अध्ययन किया जाता है। यह संबंध भाषा और संगीत दोनों को एक–दूसरे के पूरक बनाता है और दोनों कलाओं के गहन समझ के लिए उपयोगी है।

ध्वनि–चयन :

"किसी भी रचना की भाषा में ध्वनियों का चयन नहीं होता बल्कि ध्वनि के प्रभाव और विशिष्ट भावों से उनके सम्बन्ध होने के कारण विशिष्ट ध्वनियुक्त शब्दों का चयन होता है।"[3] अपनी कहानी संग्रह 'चिता के फूल' के अंतर्गत रचनाकार ने सामाजिक चेतना के आयाम एवं सर्वहार वर्ग के शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहानी में सहज लयबद्ध और प्रभावशाली ध्वनि–प्रवाह युक्त ध्वनि–चयन किया है। उनका

कथा साहित्य काव्यात्मक संगीत या अनुप्रास ध्वनि योजना से अधिक गद्य की स्वाभाविक लय पर केन्द्रित रहती है। अपनी रचनाओं में लय का प्राकृतिक निर्माण करने वाली ध्वनियों का बहुत ही सुंदर ढंग से चयन किया है। अनुप्रास या यमक का सीधा प्रयोग कम, लेकिन वाक्य–लय से ध्वनि–संगीत जो गद्य को काव्यात्मक प्रवाह देता है। इस शोध–पत्र में बेनीपुरी की 'कहीं धूप कहीं छाया', 'जीवन तरु', 'उस दिन झोंपड़ी रोई' कहानियाँ ली गई हैं।

'कहीं धूप कहीं छाया' कहानी के अंतर्गत रचनाकार ने ग्रामीण जीवन की आर्थिक असमानताओं, जातिगत भेद–भाव, साहूकारों द्वारा किये गए अत्याचारों का वर्णन बहुत की कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। शादी की तैयारी में जुटे लोग अपना अलग–अलग कार्य कर रहें हैं। एक दृश्य इस प्रकार है – "किंतु लौटा लाना जितना आसान था, धान को चिउड़ा बनाना उतना आसान न था। तो भी लग पड़ी। ईंधन नहीं था, बगीचे से पत्ते बटोर लाई। कुम्हार से कह–सुनकर एक खपड़ी माँग लाई। अब अकेले तारना, भाड़ना, घानी करना और कुटना। कभी चूल्हे–खपड़ी से झगड़ती, कभी ओखल–मूसल से युद्ध करती।"[4] इस वाक्यांश में ध्वनि–चयन सूक्ष्म घरेलू संघर्षपूर्ण और दैनिक जीवन की थकान लय को व्यक्त करने वाली ध्वनियों का बहुत सहज और यथार्थवादी प्रयोग है।

घरेलू और शारीरिक श्रम से जुड़ी ध्वनियों का सूक्ष्म चयन है। 'तारना', 'भाड़ना', 'घानी करना', 'कुटना'। 'चूल्हे–खपड़ी से झगड़ती, 'ओखल–मूसल से युद्ध करती', ये क्रियाएँ स्पष्ट ध्वनयात्मक नहीं हैं, लेकिन इनके उच्चारण और अर्थ में ही घरेलू कार्यों की खटखट, खड़खड़, कूटने, झोंकने, चटकने जैसी ध्वनियाँ छिपी हुई हैं। ध्वनि को शब्द के माध्यम से अनुभव कराया है, न कि सीधे 'खट–खट' या 'कड़–कड़' लिखकर। यह बहुत सूक्ष्म और ध्वनि–सृजन हैं।

संघर्ष और विरोध की ध्वनि का चयन है। 'झगड़ती', 'युद्ध करती' इस शब्द में ध्वनि से अधिक भाव की ध्वनि हैं जो टकराव, लड़ाई टंटा, खींचतान को व्यक्त करती है। चूल्हा, खपड़ी, ओखल, मूसल जैसे निर्जीव को भी जीवित विरोधी बना दिया गया है, जैसे वे खुद लड़ रहें हों।

ध्वनि की अनुपस्थिति और मौन का संतुलन है। कोई जोरदार चीख, कोई हँसी, कोई गीत, कोई संगीतमय ध्वनि नहीं हैं। सिर्फ श्रम की खटपट, झगड़ा, युद्ध की छोटी–छोटी ध्वनियाँ हैं। यहाँ पर ध्वनि का प्रमुख चयन शांति या संगीत में नहीं, श्रम की थकाऊ, एकाकी और दैनिक आवाजों में हैं। यह मौन और छोटी ध्वनियों का संयोजन बूढ़ी महिला के अलेके संघर्ष को बहुत मार्मिक बनाती है।

ध्वनि–चयन घरेलू, श्रम–प्रधान, संघर्षपूर्ण, सूक्ष्म–ध्वयात्मक और क्रूर यथार्थवादी है। ध्वनि युक्त शब्द 'मखाना' की बूढ़ी 'माँ' के संघर्ष को जीवंत ढंग से दर्शाया गया है।

'जीवन तरु' एक प्रभावशाली कहानी है। जिसमें ग्रामीण समाज की समस्याओं को दर्शाया गया है, जिसमें जातिगत उत्पीड़न को बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। जिसका उदाहरण इस प्रकार है – "और, आठ दिन भी नहीं बीते होंगे कि एक दिन सुबह–सुबह जब हकीम मामा स्नान कर, ठाकुरबाड़ी में पूजा–पाठ से निवृत्त हो लौट रहे थे, तो देखा, उनकी लीची के निकट एक मजमा जमा हैं। डुग–डुग, डुग–डुग की आवाज भी आ रही है। क्या बात है? वह दौड़े। वहाँ देखते हैं, चमार का एक बच्चा डुगडुगी दे रहा है। लाला पगड़ी बांधे अदालत का एक चपरासी दखलदिहानी का बोल बोल रहा है और बीस–पचीस मुस्तेंडे लाठी–बरछी लिए

लीची को घेरे हुए हैं। मामा देखते ही भौचक!"[5] इस वाक्यांश में ध्वनि–चयन नाटकीय, व्यंग्यात्मक और सामाजिक टिप्पणी से भरपूर है। लेखक ने बहुत ही सीमित लेकिन प्रभावशाली ध्वनि का प्रयोग किया है। जो घटना की तनावपूर्णता अचानकता और व्यंग्य को तीव्र करता है।

रचनाकार ने एकाकी और दोहराव वाली ध्वनि 'डुग–डुग', 'डुग–डुग'' का चयन किया है। यह डुगडुगी (ढोलक जैसे छोटा वाद्ययंत्र, जो अक्सर भिखारी, नाचने वाले या घोषणा करने वाले इस्तेमाल करते है) की विशिष्ट लयबद्धता लेकिन उबाऊ तेज ध्वनि है। दोहराव (डुग–डुग, डुग–डुग) से निरंतरता और खलबली का एहसास होता है, जैसे कोई असामान्य / खतरनाक घटना हो रही हो। यह ध्वनि दूर से आती हुई लगती है, जो जिज्ञासा और उत्सुकता पैदा करती है। 'डुगडुगी' ध्वनि सामान्यतः मजेदार ध्लोक उत्सव से जुड़ी होती है, लेकिन यहाँ नकारात्मक सन्दर्भ (चमार बच्चा, अदालत चपरासी, लाठियाँ) में इस्तेमाल किया गया है। समाज में निम्न वर्ग का 'नाच–गाना' या घोषणा भी डरावना और अपमानजनक बन जाता है। बेनीपुरी ने ध्वनि का न्यूनतम लेकिन लक्षित प्रयोग किया है। पूरे वाक्यांश में केवल एक ही मुख्य ध्वनि (डुग–डुग) है, अन्य ध्वनियाँ नहीं है। यह ध्वनि एकाग्रता पैदा करता है। लेखक ने जानबूझकर अन्य शोर भीड़ की आवाज, बातचीत को दबाकर सिर्फ इस अजीबोगरीब ध्वनि पर फोकस करता है, जिससे पाठक का ध्यान सीधा घटना की ओर जाता है। यह ध्वनि सस्पेंस और आश्चर्य का निर्माण करती है।

'ध्वनि सुनते ही मामा दौड़ते हैं, और फिर दृश्य (मजमा, लाठियाँ चपरासी का बोलना) सामने आता है। इस अंश में ध्वनि और दृश्य का संयोजन है। ध्वनि ट्रिगर का काम करती है। यह पूर्व–सूचना देती है कि कुछ गड़बड़ है, बिना वर्णन किए। यह मनोवैज्ञानिक तनाव बढ़ाती है।

'डुगडुगी' ध्वनि युक्त शब्द सामाजिक व्यंग्य को उभारने के लिए चयन किया है। जो परंपरागत रूप से निम्न जाति / भिखारी लोक–कलाकार से जुड़ी है। लेकिन यहाँ उसे अदालत चपरासी, मुस्तंडे, लाठियाँ के साथ जोड़ा गया है। जो समाज की शक्ति–प्रदर्शन और जातिगत उत्पीड़न की नंगी तस्वीर है। ध्वनि हास्यापद से भयावह हो जाती है जैसे कोई मजाक नहीं बल्कि धमकी का प्रतीक हो। मामा का 'भौचक' होना इस ध्वनि से ही और गहरा हो जाता है।

रचनाकार ने यहाँ ध्वनि–चयन अत्यल्प (केवल 'डुग–डुग') लेकिन अत्यधिक प्रभावी है जातिगत उत्पीड़न लेखक ने एक साधारण लोक–वाद्य की ध्वनि को सामाजिक अन्याय, जातिवाद और शक्ति के दुरूपयोग का प्रतीक बना दिया है। अभिव्यक्ति को व्यंग्ययुक्त बनाने के लिए ध्वनि का सूक्ष्म और तीखा प्रयोग किया है।

इस दृश्य को सजीव ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए 'डुग–डुग, डुग–डुग' जैसी ध्वनि युक्त शब्दों का चयन किया है। जिससे दृश्य में चित्रात्मकता का बोध होता है।

'उस दिन झोंपड़ी रोई' मार्मिक कहानी है। कहानी में रमेश एवं राघो नामक दो पात्रों के माध्यम से बेनीपुरी ने शोषक एवं शोषित वर्ग का चित्रण किया है। रमेश का संबंध शोषक वर्ग से है जिसे बैठे बिठाए सब कुछ प्राप्त हो जाता है। राघो शोषित है जिसे हर चीज के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जीवन के संघर्षों में राघो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कहानी में राघो की मृत्यु का संकेत इस प्रकार के व्यक्त किया गया है – "रुदन! हाहाकार! चीख! उसाँस! चीख!"[6] इस वाक्यांश में ध्वनि–चयन अत्यंत तीव्र, क्रमिक, भावनात्मक और नाटकीय है। लेखक ने यहाँ ध्वनियों को केवल वर्णन के लिए, बल्कि पीड़ा असहायता, आतंक और सामूहिकता विनाश की चरम स्थिति

को व्यक्त करने के लिए चुना है। जिसमें भावों का उन्माद है। बेनीपुरी शब्दों में एक क्रमिक तीव्रता का निर्माण करते हैं। 'रुदन' (रोना, विलाप–नरम, निरंतर) 'हाहाकार' (जोरदार, सामुहित पुकार), 'चीख' (तीखी, एकाकी चीख) 'उसाँस' (साँस फूलना, दम घुटना) 'चीख' (पुनः चरम, भेदक चीख)। यह ध्वनियाँ धीरे–धीरे बढ़ती हुई तीव्रता में आती हैं। शुरू में दर्द व्यक्तिगत और दबा हुआ है, फिर सामूहिक और असहनीय हो जाता है। यह पीड़ा के बढ़ते स्तर को ध्वनि से महसूस कराता है, जैसे कोई आपदा धीरे–धीरे चरम पर पहुँच रही हो। बेनीपुरी ने राघो की मृत्यु के माध्यम से सम्पूर्ण शोषित वर्ग की दुर्गति की ओर संकेत किया है।

चीख और चीख में 'ख' और 'ची' की ध्वनि बहुत तीखी, काटने वाली है। 'हाहाकार' में 'हा–हा' का दोहराव गूँजदार, निराशाजनक पुकार बनाता है। 'उसाँस' में 'साँ' की पुफकार दम घुटने की व्यथा को जीवंत करती है। चयनित यह ध्वनियाँ कानों में चुभती हैं। राघो की मृत्यु की वास्तिवक पीड़ा के दर्द को व्यक्त करती है।

विस्म्यादिबोधक चिन्ह (!) का बार–बार प्रयोग जो प्रत्येक ध्वनि के बाद किया गया है जो आघात, अचानकता और तीव्रता को बढ़ाती है। यह ध्वनियों को चीखों की तरह अलग–अलग फेंका हुआ महसूस कराती है, जैसे कोई लगातार चिल्ला रहा हो और रुक नहीं पा रहा। यह भावनात्मक उन्माद को और गहरा करता है।

सामूहिकता से व्यक्तिगत तक का संक्रमण जिसमें 'रुदन / हाहाकार' जो सामूहिक विलाप अर्थात् राघो के परिजन की पीड़ा को दर्शाता है। चीख / उसाँस / चीख व्यक्तिगत (राघो की माँ), असहाय, अंतिम संघर्ष को दर्शाता है। ध्वनि–चयन से व्यक्तिगत दर्द से सामूहिक त्रासदी तक का पूरा सफर दिखाता है।

न्यूनतम शब्दों में अधिकतम प्रभाव। केवल पाँच शब्द, कोई वर्णन नहीं, फिर भी राघो की मृत्यु की पूरी त्रासदी का चित्र उभर आता है। कम शब्दों में बेनीपुरी का भावनात्मक धमाका है। जहाँ यह ध्वनियाँ सामाजिक पीड़ा का प्रतीक बन जाती हैं। यह ध्वनियाँ केवल सुनाई नहीं देतीं, बल्कि हृदय को चीरती हैं। बेनीपुरी ने ध्वनि–चयन को पीड़ा के हथियार की तरह इस्तेमाल किया है। ध्वनि–चयन के माध्यम से राघो द्वारा लेखक ने सामाजिक ध्मानवीय त्रासदी व्यक्त किया है।

निष्कर्ष :-

ध्वनि–चयन उनकी क्रांतिकारी, प्रचारात्मक और जन सुलभ शैली का अभिन्न अंग है। ध्वनियों का भावानुकूल कठोर–मृदु संतुलन हैं। भावों की तीव्रता, संवाद की जीवंतता के लिए विशिष्ट ध्वनियों का चयन किया गया है। रचनाकर का ध्वनि चयन सामाजिक संदेश का संचार करती हैं। ध्वनि सरल, प्रभाव गहरा और लय स्वाभाविकता यही बेनीपुरी के कथा साहित्य का मूल सूत्र है।

सन्दर्भ सूची :-

1. नरेन्द्र, डॉ. अनिता, निराला के आलोचनात्मक लेखन में शैली वैज्ञानिक मान्यताएँ, आशा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 64
2. तिवारी, भोलानाथ, शैली विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1977, पृष्ठ संख्या 68
3. यथावत्, पृष्ठ संख्या 69
4. शर्मा, सुरेश (सम्पा०), बेनीपुरी ग्रंथावली भाग–1, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 33
5. यथावत्, पृष्ठ संख्या 77
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या 86

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 24–27
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

संगीत एवं गेय शास्त्र विधा का ऐतिहासिक विवेचन

माधुरी अनंतराव पाटील
सहाय्यक प्राध्यापिका
स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विद्यापीठ, नांदेड, महाराष्ट्र.

सारांश :

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो संगीत के उत्पत्ति के संबंध में कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। संगीत प्राचीन काल से ही अपनी प्राकृतिक स्वरूप मे सदा मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है। संगीत पृथ्वी स्थल के हर सजीव के भावनाओं को, मन को आनंदित करता है। प्राचीन काल से लेके आधुनिक काल तक संगीत में हुए परिवर्तन के क्या मायने है, उन्नति परक क्या बदलाव आए है। यह जानने का प्रयास इस इस शोध पत्रिका के माध्यम से वर्णन किया जा रहा है।

संगीत की उत्पत्ति :

संगीत की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने विचार व्यक्त किये है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रम्हा द्वारा हुई है, तथा ब्रह्मदेव ने यह विद्या भगवान शंकर को प्रदान की, भगवान शंकर ने या विद्या सरस्वती को दी और सरस्वती माता ने यह विद्या नारद मुनि को प्रदान की, नारद मुनि ने विद्या का प्रचलन पृथ्वी पर किया। प्रकृति के गोद मे पनप रहा यह संगीत पंचमहाभूतों से सम्मिलित है। विद्वान यह भी कहते है कि संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान है, जिस प्रकार शिशु अपनी सभी क्रियाएं जैसे चिल्लाना, रोना आदि में अपने आवश्यकतानुसार करता है। उसी प्रकार संगीत को अपने अंदर स्वयं बनता पाता है। संगीत का उद्‌भव प्राकृतिक ध्वनियो का अनुकरण है। प्रकृति को संगीत से जोड़ते हुए विद्वानों ने पशु–पक्षियों से संगीत का जन्म हुआ माना है।

दामोदर पंडित के अनुसार संगीत के सात स्वर विभिन्न पशु पक्षी ध्वनी है, जिसमे मोर से षड्‌ज, चातक से ऋषभ, बकरा से गांधार, क्रोंच से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत, हाथी से निषाद की उत्पत्ति मानी है। संगीत की उत्पत्ति के अनेक धार्मिक आधार है। कुछ विद्वान संगीत का उद्‌भव 'ओउम्' शब्द से मानते है। यह ओउम अपने अंदर तीन शक्तियां समाहित किये हुए है अ, उ, म। अ शब्द जन्म व उत्पत्ति का प्रतीक है, उ शब्द पालक व रक्षा का प्रतीक है, म शब्द विलय शक्ति का प्रतीक है। ओम वेदों का बीज मंत्र है। संगीत के मनोवैज्ञानिक आधार को देखा जाये तो मनुष्य पहले बोलना, चलना आदि क्रियाएं सीख के तत्पशात उसमे भाव जागृत होते है। फिर उन भावों की अभिव्यक्ति के लिए संगीत की उत्पत्ति हुई।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ध्वनी आंदोलन के परिणाम स्वरूप संगीत की उत्पत्ति होती है। प्राचीन भारतीय

संगीतकारों का विचार करें तो प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य अपनी जंगली अवस्था मे रहते थे। संगीत का कोई विकसित रूप यहा नहीं मिलता। पत्थर, लकडी का प्रयोग करके आकार देके तुकडो में आवाज करते हुए कुछ वाद्य को बनाया गया था। इस युग में नृत्य का ज्ञान नहीं था, केवल आवाज निकालते हुए गाते थे। उत्तर पाषाण काल के दौरान संगीत कला कुछ विकसित हुई। सामूहिक संगीत का जन्म हुआ जहां स्त्री–पुरुष दोनों स्वर आलाप करते हुए संगीत का आनंद लेते थे। पत्थर के उपर लकड़ी से, पत्थर से आवाज बनाकर टंकार जैसी ध्वनियां निर्माण करते थे। वैदिक काल में आर्य के मूल ग्रंथ वेदों को ही संगीत की उत्पत्ति का ग्रंथ माना जाता है। सभी विद्वान वेद को विश्व का आदि साहित्य मानते है, जिसका संगोपन करने के लिए मौखिक रूप से गुरु शिष्य परंपरा अंतर्गत होने वाले वेदों का काल 2500 ईसा पूर्व से 1200 ईसा पूर्व माना जाता है, जिसके अंतर्गत मंत्र भेद के कारण ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का संहिता के रूप में निर्माण हुआ। सामवेद को संगीत का वेद कहा गया।

वैदिक काल में सामाजिक दृष्टि से संगीत को उच्च मान्यता प्राप्त हुई। ऋग्वेद काल में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों का प्रचलन हुआ। ऋग्वेद की रचनायें स्वरावलियों में निबद्ध होने के कारण स्त्रोत कहलाई गई। गायत्रीन संज्ञा लौकिक एवं धार्मिक समारोह को गाथा के स्वरूप प्रस्तुत किये जाने वाले समारोह को दी जाती थी। ऋग्वेद काल में तीन ही प्रकार के वाद्य अवनद्ध, तंतू, सुषिर का उल्लेख पूर्ण तया विकसित स्वरूप में मिलता है। तीन स्वर जिने उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के भेद में प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद समय मिलते एक मेल को समान कहा जाता है। यजुर्वेद में वर्णित सोमयज्ञ में साम गायक का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है, जिसमें चार गायक होते हैं। अथर्ववेद में दुंदुभी नामक, आघाट, करकरी नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है। गंधर्व लोक में इन वाद्य की ध्वनि से अनुनाद से होने वाली गर्जना वीर पुरुषो के हृदय में शत्रु को परास्थ करने की भावना को झंकृत करते थे। सामवेद में मुख्य रूप से आर्चिक एवं गान यह भेद है। आर्चिक में ऋग्वेद की संग्रह है दूसरा भाग गान है, इन गान ग्रंथो मे साम का स्वर मय रूप है। पौराणिक काल में संगीत की स्थिति की जानकारी के लिए हमें शिक्षा पुराण, उपनिषद ग्रंथो का अभ्यास करके संगीतशास्त्र स्वरूप का स्तर समझना होगा। पौराणिक युग में संगीत के शास्त्रीय स्वरूप का महत्व कम हो गया था, शास्त्रीय संगीत की जगा लोक नृत्य, लोकगीत लोकसंगीत ने लिए जहा सामान्य जीवन में संगीत का प्रयोग बढने लगा। सामान्य जनजीवन में शास्त्र को छोड़कर लोककलाओ को अपनाया गया। महाकाव्य काल में गायन वादन नृत्य तीनों का उल्लेख मिलता है।

महाकाव्य काल भारत का एक गौरवशाली स्वर्ण काल रहा है। इस काल में विश्व के दो प्रसिद्ध महाकाव्य की रचना हुई, प्रथम रामायण द्वितीय महाभारत जो विश्व की धरोहर है। इस काल में संगीत का उपयोग समाज में विविध स्वरूप विभिन्न क्षेत्र में होने लगा था। महाभारत काल में गायन वादन व नृत्य तीनों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में साम व गान गाथा का बहुत उल्लेख मिलता है, गायन संबंधी कुछ शास्त्रीय शब्दों के भी संकेत महाभारत काल में मिलते है। संगीत के लिये रामायण में गंधर्व संज्ञा तथा युद्ध संगीत के लिये युद्ध गंधर्व संज्ञा मिलती है। रामायण में सामविधा का विधिवत गायन होता था। इसके अतिरिक्त उत्तर कांड में रावण के द्वारा साम स्त्रोंतों के गायन से शंकर भगवान की स्तुति करते हुए उल्लेख मिलते है। वर्ण संगीत का उल्लेख भी हमें रामायण में मिलता है। रामायण काल में स्वर, त्रिस्थान, सप्त जाति आदि का वर्णन मिलता है। तंतु वाद्यों में विपंची, बल्लरी विना तथा अवध्य वाद्य में दुंदुभी, मृदंग, पटह, मंडूक, सुषिर वाद्य में वेणू, शंख, घनवाद्य में मंजिरा, करताल का

वर्णन मिलता है। जन्म–मरण, राज्याभिषेक, पूजन आदि सभी पर 'मागध जाति' के लोग आख्यानों, वीर गाथा रचना का गायन करते थे। बौद्धकाल मे बौद्ध ज्ञान धारा मे भिक्षु के लिए संगीत निशिद्ध माना गया है, भगवान बुद्ध भी संगीत का उपयोग नही करते थे। संगीत के अंतर्गत गीत, वादित, नच्च तथा अख्खानम का उल्लेख बौद्ध धर्म की कुछ गाथाओं मे मिलता है।

जैन काल में षडज आदि सप्तस्वर, तीन ग्राम, 21 मूर्चना, अलंकार आदी का वर्णन मिलता है। आमोद, आलिंग, विचकी ताल को संगीत का आवश्यक अंग माना जाता था। हरिवंश पुराण मे वैदिक की अपेक्षा गंधर्व संगीत का अधिक प्रचलन था। मार्कंडेय पुराण में पवताल, मुर्छना, चार पद तीन ताल, जाति, तीन ग्राम, सात गीत को सप्त ग्राम का उल्लेख 23वे प्रकरण में मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण का तीसरा खंड संगीत के लिये महत्वपूर्ण है। संगीत के तीनों स्थान उर, कंठ, शिर स्वर के साथ मंत्र मध्य तार का वर्णन मिलता है। संगीत के सैद्धांतिक पक्ष का विवरण विष्णु धर्मोत्तर पुराण में देखा जाता है। मौर्यकाल में प्रसिद्ध इतिहासकार अलामी के अनुसार पहली बार भारतीय संगीत यूनान आथा और यूनानी संगीत भारत आया था। एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो संगीत गृह तथा विद्यमान संगीत के अध्यात्मिकता का, शास्त्रीय संगीत का प्रचार समय था। कनिष्क काल मे भाव नृत्य तथा कल्पना नृत्य का अधिक प्रचलन रहा। गुप्त काल में भरतपुत्र दत्तिल द्वारा लिखित दत्तिल ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। चंद्रगुप्त के पश्चात उनका पुत्र समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा जो स्वयं एक संगीतज्ञ था। राज दरबारों में संगीत उत्सव प्रारंभ आयोजन होता था। शाही संगीत समारोह में सामान्य जनता सहभाग लेती थी।

इस युग में शास्त्रीय संगीत का भी बहुत प्रचार हुआ। गुप्तकाल को नाट्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। कालिदास, भास, शूद्रक जैसे महान कवि नाटककार इसी काल में हुए। हर्षवर्धन काल हर्ष के नैषध चरित्र में अनेक वीणा प्रकारों का वर्णन मिलता है। हर्ष के दरबारी कवी बाणभट्ट ने संगीतमय कवितायें रची। मतंग के बृहद्देशी में कई महत्वपूर्ण तथ्य जो संगीत की शास्त्रविधा का वर्णन करते है। राजपूत काल घरानों की नींव रखी गई। भवभूति ने संगीत रचना की। राज तरंगिनी की रचना की। खिलजी काल में अलाउद्दीन खिलजी एक संगीत प्रेमी था, इसी के दरबार में अमीर खुसरो नामक संगीत जिन्होंने भारतीय संगीत पर अमित छाप छोड़ी, जो कव्वाली, गझल, तराना, ख्याल आदि के जनक माने जाते है। अमीर खुसरो भारतीय कला एवं संस्कृति के प्रशंसक थे। मुगल काल में बाबर महान संगीत प्रेमी था, उसके दरबार में अनेक गायक वादक थे।

इसी काल में कल्लीनाथ संगीतकार हुए। बाबर पुत्र हुमायुं भी संगीत प्रेमी था। शासन काल में स्वामी हरिदास संगीतज्ञ हुए जिनका संगीत अलौकिक था। इनके शिष्य में तानसेन अकबर के नवरत्न में अपनी छाप छोड़ी है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रचना लिखे है जो संगीत के क्षेत्र में बहुमुल्य है। जहांगीर काल में भी संगीत को शास्त्र विधा के अनुसार अनेक ग्रंथ के साथ अपना प्रचार होते हुए देखा गया। हिंदू मुस्लिम संस्कृति का आदान प्रदान इस काल में हुआ। शहाजहां के दरबार में विराम खा, लाल खा, निरंकार खान जैसे संगीतज्ञ हुए। पंडित जगन्नाथ को कविराज से सम्मानित किया गया। संगीत के बहुत से ग्रंथ लिखे गये। औरंगजेब काल मे फकर उल्ला द्वारा राग दर्पण जैसे संगीत ग्रंथ की रचना की गई। स्वतंत्रता पूर्व काल तथा स्वातंर्त्य काल एवं आधुनिक काल तक संगीत की विधाओं मे अनेक अनेक परिवर्तन हुए हमें मिलते है।

शास्त्रीय संगीत की गेय विधा का विचार करे तो इसकी भी उन्नति धीरे–धीरे स्तर बढते हुए हुई। निबद्ध गान प्रकारों के अंतर्गत प्राचीन प्रबंध गान आता है। भारतीय संगीत के प्राचीन गान शैली का एक रूप प्रबंध है।

प्रबंध शब्द अत्यंत प्राचीन है। इसके पूर्व ध्रुव गीत होते थे । इस प्रकार अनेक राग ताल वाद्य और संगीत व्याख्या अति प्राचीन होकर अप्रचलित हो गई, उसी प्रकार संगीत का प्रबंध प्रकार भी अप्रचलित हो गया। तेरहवीं शताब्दी मे प्रबंध लोकप्रिय थे।

प्रबंध के पश्चात् जाति गायन प्रचलन में आया, जिसमें जाति की दस लक्षण है। जातियों के समावेश जाति गायन में होता था। संगीत रत्नाकर के अनुसार मेदिनी, आनंदीनी, दिपिनी, भावनी, तारावली यह पांच जातियां है। इसके पश्चात् आधुनिक प्रबंध गायन आयाढ जिसमे ध्रुवपद का समावेश है। ध्रुवपद की गोबरहार, डागूर, खंडहार, नौहार यह चार बानिया है, जो जो गाई जाती है। इसके पश्चात अनिबद्ध गान प्रकार में ख्याल, ठुमरी, टप्पा, तराना, दादरा, त्रिवट, चतरंग, सादरा, रागमाला, खमसा, गझल, धमार, होरी, कजरी, चैती, भजन, कीर्तन, लोकगीत आदी का समावेश होता है।

निष्कर्ष :

कालानुक्रमानुसार संगीत की बढ़ती हुई महत्ता को देखते हुए हम निश्चित तौर पर कह सकते है कि भारतीय संगीत प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक पूरे विश्व पर अपना अधिपथ्य जमाये हुए है। संगीत के निर्मित से लेकर आज तक उन्नति एवं प्रचार–प्रसार के अनुसार हर एक काल में संगीत का पड़ता। मनुष्य जीवन में अपना स्थान इस तरह से है कि के मनुष्य के शिशुवस्था से लेके वृद्धावस्था तक हर क्षण स्वर– ताल– लय से संगीतमय है।

संदर्भ सूची :

1. वसंत, संगीत विशारद, (2019), थर्टी फर्स्ट एडिशन, संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश।
2. एस. बिडकर, संगीत शास्त्र, (2010), संस्कार प्रकाशन, पुणे।
3. उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहास।
4. संगीत कार्यालय (2015) संगीत शोध अंक।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 28–31
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

बैले और संगीत की जुगलबंदी : एक शोधात्मक अध्ययन

के. माधवी
एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

सारांश –

प्रस्तुत अध्ययन में बैले एवं संगीत के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण किया गया है। यह संबंध केवल सहायक न होकर, परस्पर आश्रित एवं पूरक स्वरूप का है। बैले की संकल्पना, संरचना तथा अभिव्यक्ति संगीत के अभाव में पूर्ण रूप से साकार नहीं हो सकती। इसी प्रकार संगीत भी बैले के माध्यम से दृश्यात्मक एवं भावात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

इस शोध पत्र में बैले और संगीत की अंतर्संबद्धता का ऐतिहासिक, सैद्धांतिक तथा संरचनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि संगीत बैले को लय, भाव एवं नाटकीयता प्रदान करता है, जबकि बैले संगीत को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से सजीव बनाता है। दोनों कलाओं के समन्वय से मंचीय प्रस्तुति अधिक प्रभावशाली, संवेदनशील तथा संप्रेषणीय बनती है। यह शोध नृत्य एवं संगीत की अंतःक्रियात्मक प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध होगा तथा प्रदर्शन कलाओं के क्षेत्र में सौंदर्यबोध एवं अभिव्यक्ति के अध्ययन को सुदृढ़ आधार प्रदान करेगा।

मुख्य शब्द : बैले, संगीत, अंतर्संबद्धता, लय, ताल, भावाभिव्यक्ति, मंचीय कला।

भूमिका –

जहाँ पूर्व के अधिकांश नृत्य शताब्दियों से विकसित एवं उच्चकोटि की परंपरागत नृत्य शैलियों की पुनरावृत्ति करते रहे हैं, वहीं पश्चिमी यूरोप तथा वे समस्त देश जहाँ यूरोपीय सभ्यता का प्रभाव रहा है, उन्होंने नृत्य को अपने सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का अभिन्न अंग बनाया। पाश्चात्य नर्तकों ने अपने नृत्य रूपों के विकास हेतु निरंतर नवीन प्रयोगों को आत्मसात किया, जिसके परिणामस्वरूप नृत्य कला में सृजनात्मकता एवं स्पष्ट वैचारिकता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीनतम उपलब्ध साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य नृत्यकला ने सामाजिक अथवा धार्मिक नृत्यों के विविध स्वरूपों को समाहित किया है। इनमें समाज के विभिन्न स्तरों पर प्रचलित सामुदायिक नृत्य भी सम्मिलित रहे हैं तथा बौद्धिक–चिंतनयुक्त रचनात्मक नृत्य भी विकसित हुए हैं, जिन्हें प्रायः विकास की चरम अवस्था के रूप में देखा जाता है।

भारत के समान ही स्पेन और फ्रांस के गुफा–चित्रों में भी कुछ आदिम नृत्य आकृतियों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस युग में यूरोपीय सभ्यता में मानव धार्मिक कृत्यों के रूप

में तथा घटनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन के रूप में नृत्य किया जाता था। विद्वानों के अनुसार, उस काल में भी नृत्य के माध्यम से भावनात्मक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक अभिव्यक्ति की जाती थी, जो पाश्चात्य नृत्य परंपरा के विकास का प्रारंभिक आधार सिद्ध होती है।

नृत्य एवं संगीत का अंतर्संबंध –

कला के क्षेत्र में नृत्य और संगीत का संबंध अत्यंत प्राचीन एवं घनिष्ठ रहा है। विश्व की लगभग सभी नृत्य परंपराओं में संगीत को अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। नृत्य की लयात्मक संरचना, भावाभिव्यक्ति तथा गतियों की स्पष्टता संगीत के माध्यम से ही साकार होती है। इसी कारण नृत्य को संगीत की दृश्यात्मक अभिव्यक्ति माना जाता है। सभी नृत्य परंपराओं में संगीत को अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। विशेष रूप से शास्त्रीय नृत्य विधाओं में संगीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। नृत्य की शारीरिक गतियाँ, हस्त–मुद्राएँ, भाव तथा संपूर्ण संरचना संगीत की लयात्मकता के कारण ही पहचान प्राप्त करती हैं। संगीत के साथ अपनी अभिन्नता के कारण ही नृत्य को विशिष्ट पहचान मिलती है।

बैले के संदर्भ में यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है। बैले की शारीरिक गतियाँ, संतुलन, सौंदर्य और भाव–संप्रेषण संगीत के लयात्मक संगठन से नियंत्रित होते हैं। बैले में संगीत की संरचना के अनुरूप नृत्य की गति, भाव तथा मंचीय विन्यास निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार बैले में नृत्य और संगीत का समन्वय नाटकीयता एवं सौंदर्यबोध को सुदृढ़ करता है। नृत्य–संगीत की इस अंतर्संबद्धता का अध्ययन नृत्य–सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि संगीत नृत्य को केवल सहारा नहीं देता, बल्कि उसे अर्थ, प्रभाव और संपूर्णता प्रदान करता है।

बैले (Ballet) –

बैले पाश्चात्य देशों में विकसित एक अत्यंत सुसंस्कृत रंगमंचीय नृत्य कला है, जिसमें संगीत, नृत्य, मंच–सज्जा, वेश–विन्यास तथा कथ्य का समन्वित प्रयोग किया जाता है। इसमें संगीत के साथ लयात्मक संतुलन, शारीरिक अनुशासन तथा विशिष्ट सौंदर्यबोध का विशेष महत्व होता है।

बैले : अवधारणा एवं व्युत्पत्ति –

शैलीबद्ध नृत्य की संकल्पना बैले से जुड़ी हुई है। बैले अपने नृत्य, संगीत तथा अलंकरण के माध्यम से किसी नाटकीय कथानक का विकास भी कर सकता है। बिना किसी वर्णात्मक विवरण के, केवल नृत्य और संगीत के संयोजन द्वारा भी बैले में कथ्य की दृश्यात्मक प्रस्तुति संभव होती है।

'बैले' (Ballet) शब्द की व्युत्पत्ति इटालियन भाषा के 'बल्लारे' (Ballare) शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ 'नृत्य करना' है। इस संदर्भ में लक्ष्मीनारायण गर्ग ने 'बैले' शब्द की उत्पत्ति 'बॉल' शब्द से बताई है, जिसका आशय नृत्य करना है; यद्यपि कुछ विद्वानों का मत है कि नृत्य–गीत को 'बैलेड' कहा जाता था, जिससे 'बैले' शब्द का प्रयोग प्रचलन में आया। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ डांस के अनुसार, बैले पश्चिमी अकादमिक रंगमंचीय नृत्य की एक प्रमुख विधा है, जो शास्त्रीय विद्यालय (The Classical School) की सुव्यवस्थित तकनीक पर आधारित होती है। इसमें नृत्य को प्रायः नाटकीय तत्वों, संगीत, मंच–सज्जा एवं वेश–विन्यास के साथ प्रस्तुत किया जाता है, जिससे इसकी अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली एवं सौंदर्यपूर्ण बनती है। इस प्रकार बैले न केवल एक नृत्य शैली है, बल्कि यह संगीत, नाट्य और दृश्य कला के समन्वय से विकसित एक समग्र रंगमंचीय कला

रूप के रूप में प्रतिष्ठित है।

बैले : अर्थ एवं ऐतिहासिक विकास –

बैले का शाब्दिक अर्थ रंगमंच पर गीत–संगीत के सहयोग से नृत्य के माध्यम द्वारा कथानक का नाटकीय अथवा काव्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करना है। इसमें नृत्य, संगीत और दृश्यात्मक संयोजन के द्वारा भावों एवं घटनाओं का सजीव मंचन किया जाता है। बैले का प्रारंभ 15वीं एवं 16वीं शताब्दी में इटालियन राजपरिवारों के दरबारी नाट्यात्मक मनोरंजन के रूप में हुआ। इन नाट्य प्रस्तुतियों में नर्तक स्वयं ही किसी पौराणिक अथवा काल्पनिक कथानक के आधार पर नृत्य, मुख–अभिनय, गीत, संवाद, संगीत और भव्य वेश–विन्यास के साथ प्रस्तुति देते थे। नृत्य एवं वेश–विन्यास के इन प्रयोगों से जब रंगमंचीय अभिव्यक्ति को एक सुसंगठित रूप प्रदान किया गया, तब यह कला–रूप 'बैले' के रूप में विकसित हुआ। इस विकासक्रम में बैले को एक स्वतंत्र और सुस्पष्ट कला–रूप के रूप में प्रतिष्ठित करने में कई शताब्दियाँ लगीं। बैले ने अपने भीतर तकनीकी अनुशासन, शारीरिक संतुलन, लयात्मक संरचना तथा सौंदर्यात्मक स्पष्टता को आत्मसात किया। इस कला–रूप की तकनीक को इटली में 15वीं सदी के यूरोपीय पुनर्जागरण काल के दरबारी मनोरंजन से विकसित माना जाता है। इस प्रकार बैले का विकास केवल एक नृत्य शैली के रूप में नहीं, बल्कि एक समग्र रंगमंचीय कला के रूप में हुआ, जिसमें नृत्य, संगीत, अभिनय और दृश्य तत्वों का समन्वित प्रयोग इसकी प्रमुख विशेषता है।

यूरोप में बैले का प्रारंभिक विकास –

इटली में वर्ष 1489 ई. में एक समारोह के अवसर पर 'एंटी' नामक नृत्य की प्रस्तुति की गई, जिसे प्रारंभिक बैले प्रस्तुति के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके पश्चात 1581 ई. में बैले के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई, जब फ्रांस में 'बैले द ला रेन' (Ballet de la Reine) नामक भव्य बैले का मंचन किया गया। यह प्रस्तुति लगभग पाँच घंटे तक चली, जिसे लगभग दस हज़ार दर्शकों ने देखा। इस बैले में नृत्य के साथ–साथ संगीत एवं नाटकीय तत्वों का प्रभावशाली समन्वय किया गया था। इस प्रस्तुति में बैले को केवल मनोरंजन के साधन के रूप में नहीं, बल्कि एक संगठित नाट्य कला के रूप में प्रस्तुत किया गया। बैले की संरचना में कथानक, अभिनय, संगीत तथा मंचीय विन्यास को समान महत्व दिया गया, जिससे इसकी पहचान एक स्वतंत्र रंगमंचीय कला के रूप में स्थापित हुई।

1581 ई. में ही फेब्रित्सियो कारोसो (Fabrizio Caroso) ने 'बल्लारीनी' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें इटली के बैले की तकनीकी पद्धति का विस्तृत वर्णन किया गया। सोलहवीं शताब्दी के अंत तक बैले में तकनीकी स्पष्टता एवं संरचनात्मक परिष्कार दिखाई देने लगा, जिससे यह कला अधिक परिपक्व स्वरूप में विकसित हुई। अठारहवीं शताब्दी में बैले के क्षेत्र में और अधिक सैद्धांतिक एवं तकनीकी विकास हुआ। इस काल में कोरियोग्राफी (Choreographic) विषयक ग्रंथों की रचना की गई। राउल ऑजे फेइये (Raoul Auger Feuillet) द्वारा प्रकाशित कोरियोग्राफी संबंधी ग्रंथ ने बैले की गतियों, संरचना और प्रस्तुति को लिखित रूप में संरक्षित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार यूरोप में बैले का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में हुआ, जिसमें दरबारी मनोरंजन से लेकर एक सुसंस्कृत, सैद्धांतिक और तकनीकी रूप से परिपक्व रंगमंचीय कला तक की यात्रा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

बैले में संगीत की भूमिका एवं उपयोग –

बैले के इतिहास में यह पहली बार देखा गया कि नृत्य को संगीत की भाँति लिपिबद्ध (Notation) करने का प्रयास किया गया। इस संदर्भ में प्रयुक्त शब्द कोरियोग्राफी (Choreography) फ्रेंच भाषा से लिया गया है। यह शब्द ग्रीक भाषा के कोरियो (नृत्य अथवा गति) तथा ग्राफीन (लिखना) शब्दों से निर्मित है, जिसका तात्पर्य नृत्य गतियों को लिखित रूप में संरक्षित करना है। हास्केल अर्नोल्ड अपनी पुस्तक Going to the Ballet में उल्लेख करते हैं कि बैले में संगीत केवल श्रव्य माध्यम न होकर दृश्यात्मक प्रभाव भी उत्पन्न करता है। बैले में संगीत का प्रयोग नृत्य को एक सजीव दृश्य रूप प्रदान करता है। यह संगीत विशेष रूप से बैले के लिए रचा जाता है अथवा शास्त्रीय पाश्चात्य संगीत परंपरा से चयनित किया जाता है। संगीत की ताल नर्तक की गति को नियंत्रित करती है, जबकि उसकी रागात्मक संरचना वातावरण एवं भावनात्मक संदर्भ को सशक्त बनाती है। संगीत के माध्यम से कथ्य, वातावरण तथा चरित्रों के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया जाता है।

बैले–संगीत की उत्कृष्टता के प्रमुख उदाहरणों में योग क्लासिक (Yog Classic) एवं प्योत्र इलिच त्चाइकोव्स्की द्वारा रचित स्वान लेक, द नटक्रैकर तथा स्लीपिंग ब्यूटी जैसी अमर रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों में संगीत एवं नृत्य का अद्वितीय समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जो बैले को एक संपूर्ण रंगमंचीय कला के रूप में स्थापित करता है।

बैले में संगीत-नृत्य की अंतःक्रियात्मक संरचना –

बैले, संगीत एवं नृत्य की एक आदर्श समन्वित कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन दोनों कलाओं में संगीत और नृत्य का ऐसा गहन पारस्परिक संबंध स्थापित होता है कि उन्हें पृथक करना प्रायः असंभव प्रतीत होता है। यह समन्वय केवल बाह्य नहीं, बल्कि आंतरिक एवं भावात्मक स्तर पर भी प्रभावी होता है। अपने सिद्धांतों की दृष्टि से बैले एक प्रयोगधर्मी कला है, जो तकनीकी दृष्टि से नृत्य की विविध विधियों को समाहित करती है। बैले में नर्तक की शारीरिक संरचना, संतुलन एवं नियंत्रण पर विशेष बल दिया जाता है, जो इसे शास्त्रीय नृत्य की परंपरा से जोड़ता है। बैले की संरचना में नृत्य, दृश्य–सज्जा, वेशभूषा तथा मंच–सज्जा का समन्वित योगदान स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

उपसंहार –

बैले एवं संगीत की युगलबंदी एक सजीव कलात्मक संवाद है, जिसमें दोनों कलाएँ एक–दूसरे को पूर्णता प्रदान करती हैं। संगीत बैले को लय, भाव एवं संरचना प्रदान करता है, जबकि नृत्य संगीत को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति देता है। इस पारस्परिक संबंध के माध्यम से नृत्य और संगीत की संयुक्त शक्ति एक समग्र कलात्मक अनुभव का सृजन करती है, जो दर्शक को सौंदर्यबोध एवं भावनात्मक अनुभूति से समृद्ध करती है। इस प्रकार बैले एक ऐसी मंचीय कला के रूप में विकसित होता है, जिसमें संगीत और नृत्य साथ–साथ विकसित होकर एक पूर्ण कला रूप का निर्माण करते हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. दाधीच, पुरु. (2019). कथक नृत्य शिक्षा. इन्दौर : बिन्दु प्रकाशन, पृ. सं. – 65
2. दाधीच, पुरु. (2019). कथक नृत्य शिक्षा. इन्दौर : बिन्दु प्रकाशन, पृ. सं. – 65

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 32–38
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

दूरदर्शन पर प्रसारित राष्ट्रवादी गीतों का समाज पर प्रभाव

डॉ. मनीष चौधरी
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
माता जीजाबाई शा. (स्वशासी) स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला इंदौर (म. प्र.)

शोध सार –

राष्ट्रवाद एक सामूहिक मनोवैज्ञानिक चेतना है, जो किसी क्षेत्र के निवासियों को अतीत और वर्तमान के आधार पर जोड़ने के साथ सुखद भविष्य के साझे सपने बुनती है। इतिहास साक्षी है अपनी अद्‌भुत भौगोलिक विशेषताओं के कारण भारत ने न तो अपनी सीमाओं को लांघा है और न ही भारत को उसकी प्राकृतिक सीमाओं से विचलित किया जा सका है। साथ ही यह सत्य है कि भारत में सदैव सांस्कृतिक, सामाजिक और भाषायी विविधता विद्यमान रही है, फिर भी सम्पूर्ण भारत में एक ही आध्यात्मिक चेतना का आबाध प्रवाह रहा है और इसी कारण यहां के नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना पनपी, जिसे स्वार्थवश प्रभावित किए जाने के प्रयास होते रहे हैं।

जब बात स्वतंत्र भारत की होती है तो नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना जगाने और बनाए रखने में दूरदर्शन की महती भूमिका रही है। इस पर विविध कार्यक्रमों के अंतराल में नियमित रूप से ऐसे गीत दिखाए जाते थे, जो भारतीय संस्कृति को समग्र रूप से प्रस्तुत कर जनमानस पर सकारात्मक भाव अंकित करने में सक्षम रहें हैं। प्रस्तुत शोध प्रमुख गीतों और उनके प्रभाव की पड़ताल कर रहा है।

प्रस्तावना –

राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक सामूहिक मनोवैज्ञानिक चेतना है, जो किसी भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों को साझा इतिहास, संस्कृति और भविष्य के सपनों से जोड़ती है। भारत जैसे महाद्वीपीय विविधता वाले राष्ट्र में, जहाँ कोस–कोस पर पानी और चार कोस पर वाणी बदल जाती है, वहाँ 'राष्ट्रीय एकीकरण' (National Integration) का कार्य सदैव से चुनौतीपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात के प्रारंभिक दशकों में जहाँ आधुनिक भारत की नींव रखी जा रही थी, वहीं 1980 का दशक तकनीकी और संचार क्रांति के संधिकाल के रूप में उभरा। इसी कालखंड में 'दूरदर्शन' ने भारतीय घरों में अपनी दस्तक दी और देखते ही देखते यह केवल मनोरंजन का साधन न रहकर 'राष्ट्र–निर्माण' (Nation Building) का एक प्राथमिक

उपकरण बन गया।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य केंद्र उन 'राष्ट्रवादी गीतों' का विश्लेषण करना है, जिन्होंने सन् 1980 से 2010 के मध्य दूरदर्शन के माध्यम से भारतीय जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। सन् 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में भारत कई आंतरिक चुनौतियों, क्षेत्रीय असंतोष और अलगाववादी प्रवृत्तियों से जूझ रहा था। ऐसे में समाज को भाषाई और सांस्कृतिक सीमाओं से परे एक सूत्र में पिरोने के लिए 'दृश्य–श्रव्य' (Audio-Visual) माध्यम का सहारा लिया गया। शोध का तर्क यह है कि संगीत की सार्वभौमिक भाषा और दूरदर्शन की व्यापक पहुँच ने मिलकर एक ऐसे 'कल्पित समुदाय' (Imagined Community) की अवधारणा को धरातल पर उतारा, जहाँ कश्मीर से कन्याकुमारी तक का नागरिक स्वयं को एक साझी पहचान 'भारतीयता' में ढूँढने लगा।

यह प्रस्तावना इस तथ्य को भी रेखांकित करती है कि ये गीत केवल सरकारी सूचनाएँ या विज्ञापन मात्र नहीं थे, बल्कि ये कलात्मक श्रेष्ठता और सामाजिक इंजीनियरिंग का एक अनूठा संगम थे। 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' या 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' जैसे गीतों ने दृश्य प्रतीकों (Visual Symbols) के माध्यम से विविधता को एक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। यह शोध पत्र इस बात की पड़ताल करेगा कि कैसे इन गीतों ने सांस्कृतिक कूटनीति (Cultural Diplomacy) के माध्यम से देश के भीतर एकता के भाव को सुदृढ़ किया और तत्कालीन समाज की मनोवैज्ञानिक संरचना को प्रभावित किया।

शोध के उद्देश्य –

भारत की विविधता में एकता को सुनिश्चित करने के लिए दूरदर्शन द्वारा संगीत में कार्यक्रमों की जो भूमिका रही है उसका मूल्यांकन करना।

भारतीय एकता और अखंडता के लिए राष्ट्रवादी गीतों का दूरदर्शन पर प्रसारण के महत्व का मूल्यांकन करना और समाज में इनके प्रभावों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि –

उक्त शोध पत्र भारत में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित राष्ट्रवादी गीतों के महत्व और समाज में उनकी उपयोगिता का अध्ययन करने हेतु बनाया गया है जिसमें प्राथमिक स्त्रोत के रूप में अवलोकन एवं सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है। साथ ही द्वितीय स्त्रोत के रूप में कुछ पत्र–पत्रिकाओं पुस्तकों का अध्ययन कर तथ्यों का संकलन किया गया है। तदोपरांत तार्किक विश्लेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचा गया है।

दूरदर्शन का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव (Social-Cultural Impact)

1980 और 90 के दशक में दूरदर्शन का प्रभाव केवल एक प्रसारण माध्यम तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज के आधुनिकिकरण और एकीकरण की धूरी बन चुका था। इस कालखंड को समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'सामूहिक चेतना के निर्माण का युग' कहा जा सकता है। निजी सैटेलाइट चैनलों के आगमन से पूर्व, दूरदर्शन ही वह एकमात्र खिड़की थी जिसके माध्यम से पूरा भारत एक साथ दुनिया को देख रहा था और स्वयं को समझ रहा था।

- **सांस्कृतिक साक्षरता और दृश्य एकीकरण :** भारत की भौगोलिक विशालता के कारण देश का एक बड़ा हिस्सा अन्य क्षेत्रों की परंपराओं से अनभिज्ञ था। दूरदर्शन पर प्रसारित राष्ट्रवादी गीतों ने पहली बार केरल के

कथकली, पंजाब के भांगड़ा और पूर्वोत्तर के बिहू को एक ही मंच पर लाकर खड़ा किया। इसने समाज में 'सांस्कृतिक साक्षरता' (Cultural Literacy) को बढ़ाया। जब दर्शकों ने 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' में अलग–अलग राज्यों के पहनावे और वाद्ययंत्रों को देखा, तो उनके मन में 'अलगाव' का भाव समाप्त हुआ और 'आत्मीयता' का उदय हुआ।

- **राष्ट्रीय उत्सव का सामूहिक अनुभव :** दूरदर्शन ने राष्ट्रीय पर्वों (15 अगस्त और 26 जनवरी) को घरों के भीतर एक उत्सव का रूप दे दिया। इन राष्ट्रवादी गीतों का बार–बार प्रसारण एक प्रकार का 'सामाजिक अनुकूलन' (Social Conditioning) था, जिसने नागरिकों के भीतर राज्य और राष्ट्र के प्रति सम्मान के भाव को सुदृढ़ किया। यह माध्यम साक्षर और निरक्षर दोनों वर्गों के लिए समान रूप से प्रभावी था क्योंकि संगीत और दृश्यों को समझने के लिए किसी औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी।
- **शास्त्रीयता से सुगमता की ओर :** दूरदर्शन ने 'उच्च कला' (High Art) को अभिजात्य वर्ग के ड्राइंग रूम से निकालकर आम जनता के आँगन तक पहुँचाया। पंडित भीमसेन जोशी, एम. बालमुरली कृष्णन और लता मंगेशकर जैसे दिग्गजों को इन गीतों के माध्यम से घर–घर में पहचाना जाने लगा। इसने भारतीय शास्त्रीय संगीत को राष्ट्रवाद के एक अनिवार्य अंग के रूप में स्थापित किया।
- **विविधता का उत्सव :** तत्कालीन सामाजिक तनावों के बीच, दूरदर्शन ने 'एकता' के उस मॉडल को प्रस्तुत किया जो समावेशी (Inclusive) था। इन गीतों ने यह संदेश दिया कि भारतीयता का अर्थ अपनी क्षेत्रीय पहचान को त्यागना नहीं, बल्कि उसे राष्ट्र के व्यापक संदर्भ में स्वीकार करना है। इस प्रकार, दूरदर्शन ने एक ऐसे 'सामाजिक गोंद' (Social Glue) का कार्य किया जिसने खंडित समाज को जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

प्रमुख गीतों का विस्तृत विश्लेषण (Case Studies)

दूरदर्शन द्वारा निर्मित राष्ट्रवादी गीतों की श्रृंखला में कुछ ऐसी रचनाएँ रहीं जिन्होंने न केवल लोकप्रियता के कीर्तिमान स्थापित किए, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के 'दृश्य व्याकरण' (Visual Grammar) को ही बदल दिया। यहाँ हम तीन प्रमुख गीतों का गहन विश्लेषण करेंगे :–

1988 में प्रसारित यह गीत स्वतंत्र भारत के संचार इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इसका निर्माण 'लोक सेवा संचार परिषद' द्वारा किया गया था।

- **संगीतमय रागमलिका :** इस गीत की महानता इसके संगीत संयोजन में निहित है। इसकी शुरुआत राग 'भैरवी' से होती है, जो भारतीय संगीत में अत्यंत पवित्र और शांति पूर्ण राग माना जाता है। पंडित भीमसेन जोशी की गंभीर और भारी आवाज से शुरू होकर यह गीत कर्नाटक संगीत के प्रकांड विद्वान बालमुरली कृष्णन की सुरीली तानों तक पहुँचता है। यह शास्त्रीय संगीत के उत्तर और दक्षिण ध्रुवों का मिलन था।
- **भाषायी और क्षेत्रीय समावेश :** गीत में हिंदी के अतिरिक्त कश्मीरी, पंजाबी, सिंधी, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, बांग्ला, ओड़िया, गुजराती और मराठी का प्रयोग किया गया। शोध की दृष्टि से, यह 'भाषायी विविधता' को समस्या के बजाय 'शक्ति' के रूप में पेश करने का पहला बड़ा प्रयोग था। जब एक कश्मीरी बच्चा 'च्येनि म्येनि सुर ग्वयि मिलिथ' सुनता है, तो वह राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ाव महसूस करता है।
- **विजुअल सिमेंटिक्स (दृश्य अर्थ) :** वीडियो में भारतीय रेल, हाथियों का झुंड, हिमालय और समुद्र के दृश्य

भारत की भौगोलिक अखंडता को दर्शाते हैं। अमिताभ बच्चन, प्रकाश पादुकोण, और कमल हासन जैसे सितारों का एक सामान्य नागरिक की तरह दिखना 'अभिजात्य' और 'आम आदमी' के बीच की दूरी को कम करता है।

- **तुलनात्मक विश्लेषण (सन् 1988 बनाम 2010) :** सन् 2010 में ए. आर. रहमान द्वारा संगीतबद्ध 'फिर मिले सुर' में आधुनिक वाद्ययंत्रों और बॉलीवुड सितारों की बहुलता थी। जहाँ सन् 1988 का संस्करण 'आध्यात्मिक और सांस्कृतिक एकता' पर केंद्रित था, वहीं सन् 2010 का संस्करण 'आधुनिक और गतिशील भारत' की तस्वीर पेश करता था। हालांकि, शोध यह भी बताता है कि सन् 1988 के संस्करण का भावनात्मक प्रभाव अधिक गहरा था, क्योंकि वह 'सादगी' पर आधारित था।

'सुन-सुन-सुन मेरे नन्हे सुन' : भावी पीढ़ी का निर्माण :

1998 के आसपास प्रसारित इस गीत ने विशेष रूप से 'जेन–जी' और 'मिलेनियल्स' की प्रारंभिक चेतना को प्रभावित किया।

- **बाल मनोविज्ञान और नायकत्व :** जैकी श्रॉफ, जो उस समय के लोकप्रिय अभिनेता थे, का बच्चों के बीच बैठकर यह गीत गाना एक प्रभावशाली रणनीति थी। 'सारा भारत ये कहे, देश में एकता रहे' का संदेश बच्चों के लिए राष्ट्रवाद का पहला पाठ बना।
- **सामाजिक समरसता :** दृश्य के स्तर पर, विभिन्न धार्मिक पहचान वाले बच्चों को एक साथ खेलते दिखाना भारत के 'धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने' (Secular Fabric) को मजबूत करने का प्रयास था। यह गीत सिखाता है कि राष्ट्रवाद केवल सीमाओं पर लड़ना नहीं, बल्कि आपस में प्रेम के साथ रहना भी है।

'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' : ऐतिहासिक गौरव और प्रतीकवाद :

- श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' द्वारा रचित यह झंडा गीत दूरदर्शन पर अपनी विजुअल प्रस्तुति के कारण अमर हो गया।
- **ऐतिहासिक निरंतरता :** सन् 1924 में लिखा गया यह गीत स्वतंत्रता संग्राम का 'एंथम' था। दूरदर्शन ने इसे 26 जनवरी की परेड और लहराते हुए विशाल तिरंगों के साथ जोड़कर नागरिकों में 'सामूहिक गौरव' भरा।
- **प्रतीकात्मक विश्लेषण :** 'सदा शक्ति बरसाने वाला' – यहाँ 'शक्ति' को 'प्रेम' (प्रेम सुधा सरसाने वाला) के साथ जोड़ा गया है। यह भारतीय राष्ट्रवाद के उस दर्शन को दर्शाता है, जहाँ शक्ति का उपयोग विनाश के लिए नहीं, बल्कि जनकल्याण के लिए किया जाता है। यह गीत नागरिकों के भीतर 'ध्वज' के प्रति एक पवित्र श्रद्धा भाव पैदा करने में सफल रहा।
- **"बजे सरगम हर तरफ से, गूँज बनकर देश राग" :** दूरदर्शन पर प्रसारित राष्ट्रवादी गीतों की परंपरा में "बजे सरगम हर तरफ से, गूँज बनकर देश राग" एक विशिष्ट सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में उभरता है। यह गीत भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग देश पर आधारित है, जो स्वयं में राष्ट्रभाव, गरिमा और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक माना जाता है। गीत की संकल्पना इस विचार को रेखांकित करती है कि भारत की विविध भाषाएँ, सुर, वाद्य और कलात्मक परंपराएँ मिलकर एक साझा 'देश राग' की रचना करती हैं। इसमें 'सरगम' का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से भारत की बहुरंगी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को दर्शाता है, जो जब एक साथ गूँजती हैं, तो राष्ट्रीय एकता का स्वर निर्मित करती हैं। यह प्रस्तुति केवल संगीत तक सीमित न रहकर दृश्य माध्यम के द्वारा

विभिन्न क्षेत्रों, कलाकारों और पारंपरिक वाद्ययंत्रों को एक मंच पर लाकर भारत की विविधता में एकता की अवधारणा को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार यह गीत दूरदर्शन के उस सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है, जिसमें कला और संगीत को राष्ट्र निर्माण तथा सामाजिक समरसता के प्रभावी माध्यम के रूप में देखा गया।

मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण (Psychological and Sociological Perspective)

- राष्ट्रवादी गीतों का प्रभाव केवल कानों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह गहरे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्तर पर कार्य करता है। संगीत में वह शक्ति होती है जो तार्किक मस्तिष्क को पार कर सीधे भावनाओं को स्पर्श करती है।
- **संवेगात्मक अनुनाद (Emotional Resonance) :** मनोवैज्ञानिक रूप से, जब कोई व्यक्ति सामूहिक लय या 'कोरस' में गाता है, तो उसके भीतर 'ऑक्सीटोसिन' नामक हार्मोन का स्राव होता है, जिसे 'बॉन्डिंग हार्मोन' भी कहा जाता है। दूरदर्शन के गीतों में 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' जैसी रचनाएँ जब करोड़ों लोग एक साथ सुनते थे, तो इसने एक 'सामूहिक उत्साह' (Collective Effervescence) पैदा किया। यह भावना व्यक्ति को उसके संकीर्ण व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठाकर एक वृहद इकाई (राष्ट्र) से जोड़ देती है।
- **दृश्य अनुकूलन और राष्ट्र की कल्पना :** प्रसिद्ध विचारक बेनेडिक्ट एंडरसन ने राष्ट्र को एक 'कल्पित समुदाय' कहा है। भारत जैसे देश में, जहाँ एक व्यक्ति कभी भी अपने जीवन में सभी साथी नागरिकों से नहीं मिल सकता, वहाँ ये गीत 'दृश्य सेतु' का कार्य करते हैं। जब दर्शक स्क्रीन पर विभिन्न प्रांतों के लोगों को मुस्कुराते और तिरंगे के साथ देखते हैं, तो उनका मस्तिष्क एक ऐसी छवि बनाता है, जहाँ वे अज्ञात लोगों के साथ भी एक भावनात्मक जुड़ाव महसूस करते हैं।
- **सॉफ्ट राष्ट्रवाद बनाम उग्र राष्ट्रवाद :** समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, दूरदर्शन के इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता इनका 'समावेशी' (Inclusive) होना था। ये गीत किसी शत्रु देश के प्रति घृणा पर आधारित नहीं थे, बल्कि अपनी ही आंतरिक विविधता के प्रति प्रेम पर आधारित थे। यह 'सॉफ्ट राष्ट्रवाद' समाज में सहिष्णुता और समरसता को बढ़ावा देने का कार्य करता था।
- **अधिगम और समाजीकरण (Socialization) :** बच्चों के लिए 'सुन–सुन–सुन मेरे नन्हे सुन' जैसे गीत समाजीकरण की एक प्रक्रिया थे। ये गीत बच्चों के कोमल मन पर यह अंकित कर देते थे कि तिरंगा, राष्ट्रगान और विविधता भारत की पहचान के अनिवार्य अंग हैं। इस प्रकार, संगीत ने एक 'अदृश्य शिक्षक' की भूमिका निभाई।

तुलनात्मक अध्ययन और वर्तमान स्थिति (Comparative Study) :

यदि हम सन् 1980 के दशक के गीतों की तुलना आज के डिजिटल युग के राष्ट्रवादी कंटेंट से करें, तो कई महत्वपूर्ण शोध बिंदु उभरते हैं :–

- **एकाधिकार बनाम बिखराव :** दूरदर्शन के पास उस समय सूचना का एकाधिकार था, जिससे वह एक 'साझा नैरेटिव' (Shared Narrative) बनाने में सफल रहा। आज सोशल मीडिया और हजारों चैनलों के युग में दर्शक और उनकी विचारधाराएँ खंडित (Fragmented) हो गई हैं। आज कोई एक गीत पूरे भारत को वैसे ही

एक सूत्र में बांध पाए, इसकी संभावना कम हो गई है।

- **कला बनाम व्यावसायिकता :** पुराने गीतों में शास्त्रीय शुद्धता और कलात्मकता को प्राथमिकता दी जाती थी। वर्तमान में देशभक्ति गीत अक्सर फिल्मों के विपणन (Marketing) या 'ट्रेंड' का हिस्सा बनकर रह गए हैं, जिससे उनकी स्थायी विरासत वैसी नहीं बन पाती जैसी 'मिले सुर' की बनी।

निष्कर्ष (Conclusion) :

प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले राष्ट्रवादी गीत केवल मनोरंजन या सरकारी सूचना के माध्यम नहीं थे, बल्कि वे आधुनिक भारत की 'सांस्कृतिक रीढ़' के निर्माण के गंभीर प्रयास थे। इन गीतों ने सिद्ध किया कि जब संगीत की शक्ति, कलात्मक श्रेष्ठता और दृश्य संचार का समावेश होता है, तो वह किसी भी राजनीतिक भाषण से अधिक प्रभावी ढंग से जनमानस को प्रभावित कर सकता है।

शोध के मुख्य निष्कर्षों को निम्नलिखित बिंदुओं में समेटा जा सकता है–

- **एकीकरण का उपकरण :** 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' जैसे गीतों ने सफलतापूर्वक यह संदेश दिया कि विविधता राष्ट्र के लिए बोझ नहीं, बल्कि उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। इसने भाषायी और क्षेत्रीय दीवारों को गिराकर 'भारतीयता' की एक साझी पहचान गढ़ी।
- **संस्कार और चेतना :** 'सुन–सुन–सुन मेरे नन्हे सुन' जैसे गीतों ने आने वाली पीढ़ियों के भीतर राष्ट्रीयएकता के बीज बोए, जो सामाजिक समरसता के लिए अनिवार्य थे।
- **विरासत की निरंतरता :** यद्यपि आज संचार के माध्यम बदल चुके हैं और सूचनाओं का बिखराव बढ़ा है, परंतु दूरदर्शन के इन गीतों की 'उदात्त भावना' और 'समावेशी राष्ट्रवाद' आज भी प्रासंगिक है।

निष्कर्षत :–

दूरदर्शन के इन गीतों ने भारत के एक ऐसे रूप की कल्पना को साकार किया, जो अपनी परंपराओं में गहराई तक जड़ा हुआ है और अपने भविष्य के प्रति आधुनिक और गतिशील है। ये गीत आज भी हमें याद दिलाते हैं कि राष्ट्र केवल मानचित्र की रेखाओं से नहीं, बल्कि साझा सुरों, साझा सपनों और साझा गौरव से बनता है। भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए यह अध्ययन एक आधार प्रदान करता है कि कैसे डिजिटल युग में भी संगीत और कला के माध्यम से सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता को पुनः सुदृढ़ किया जा सकता है।

सुझाव :

दूरदर्शन पर प्रसारित किए जाने वाले इन गीतों का प्रसारण दूरदर्शन के अतिरिक्त विभिन्न टीवी चैनलों पर भी किया जाना चाहिए जिससे इनकी भावनाओं का पूर्ण उपयोग किया जा सके और समाज में इन गीतों के प्रभाव को और अधिक बढ़ाया जा सके।

संदर्भ सूची (References) :

1. दूरदर्शन अभिलेखागार. (1988). राष्ट्रीय एकता पर आधारित विशेष संगीत प्रस्तुतियाँ. नई दिल्ली : प्रसार भारती।

2. पांडे, पीयूष. (2009). मिले सुर मेरा तुम्हारा : संकल्पना और सांस्कृतिक प्रभाव. भारतीय जनसंचार पत्रिका, 14(2), 45–58।
3. शर्मा, रामकुमार. (2012). भारतीय राष्ट्रवाद और संगीत की भूमिका. वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ।
4. त्रिपाठी, सुधा. (2015). टेलीविजन और राष्ट्र–निर्माण : दूरदर्शन का योगदान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
5. Rao, S. (2010). Public Service Broadcasting in India : Doordarshan and National Integration. Journal of Media Studies, 6(1), 21–34.
6. Chatterjee, P. (1997). The Nation and Its Fragments. Princeton University Press.
7. प्रसार भारती. (1990). राष्ट्रीय पर्वों पर प्रसारित सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भूमिका. सरकारी प्रकाशन, भारत सरकार।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 39–40
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

काव्य और संगीत का अन्तर्सबंध

डॉ. मंजु पटेल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
श्री भगवानदास आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार।

काव्य और संगीत दो ऐसी कलाएं हैं जो एक दूसरे के पूरक हैं। काव्य शब्दों से भावों को अभिव्यक्त करता है और संगीत स्वरों के माध्यम से। भारतीय साहित्य में काव्य और साहित्य का ललित कलाओं में सर्वोच्च स्थान हैं। इन दो कलाओं के अभाव में मनुष्य को पशु के समान कहा गया है।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।[1]

काव्य और संगीत का परम प्रयोजन रस निष्पत्ति है। जहां काव्य व्यंजनावृत्ति से रस का आस्वादन करता है वहीं संगीत सुर से। प्राचीन काल से ही काव्य और संगीत का अन्तर्सम्बन्ध चला आ रहा है। सामवेद संगीत और काव्य के अनन्य सम्बन्ध का प्रमाण है। ऋचाओं का गायन उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वर में किया जाता है। भक्तिकाल में सुरदास, तुलसीदास, मीराबाई कबीरादि के पद शुद्ध रागों पर आधारित थे जिन्हें आज भी उन्हीं रागों में गाया जाता है। काव्य के स्वरूप का प्रतिपादक ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में अनेकों प्रसंगों में संगीत की चर्चा की गयी है. क्योंकि संगीत काव्य का उपकारक है। काव्य का ही अपर रूप नाट्य है। नाटक में सर्वप्रथम उपस्थापित किया जाने वाला पूर्वरंग संगीत के साथ ही प्रारम्भ की प्राचीन पद्धति है। नाटक के मध्य में संगीत अत्यावश्यक अंग बनकर रसपोष में सहायक सिद्ध होता है। अंक के प्रारम्भ और अन्त में गीतादि रहते ही है। महर्षि भरत द्वारा संगीत का नाट्य शास्त्र में बहुलता से वर्णन करना इसे नाट्य का अपरिहार्य अंग सिद्ध करता है। नाट्य में भाव तथा रस की परम अवस्था दर्शानी हो तो संगीत रस भाव के परम अवस्था के प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संगीत का सन्तुलित प्रयोग नाट्य में रसवत्ता प्रकाशन में अनन्य सहभागिता निभाता है। नाट्यशास्त्र का 28 वां अध्याय आतोद्य विधानाध्याय से प्रख्यात है। यह संगीत का विवरण देने वाला अध्याय है। संगीत ही नाट्य के अन्तर्गत रसभावादि की उद्रेकमयी अवस्था को उन्नत दशा तक ले जाने में सहयोगी बनता है। जिससे नाटक सफल होता है और उसका सौन्दर्य भी बना रहता है। जैसा कि कहा गया है–

हास्यश्रृंगारयोः कार्यौ स्वरौ मध्यमपंचमौ।
षड्जर्षभौ च कर्तव्यौ वीररौद्राद्भुतेष्थ।[2]
गान्धारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करूणे रसे।
धैवतश्च प्रयोक्तव्यो बीभत्से सभयानके।[3]

श्रृंगार और हास्य रस में मध्यम व पंचम का प्रयोग करना चाहिये। षडज् और ऋषभ वीर व अदभुत् रस

के अनुकूल स्वर है। करूण रसानुकूल गान्धार व निषाद तथा धैवत बीभत्स व भयानक में प्रयोज्य है।

आधुनिक विद्नद्नर्ग ने भी काव्य में संगीत को अनिवार्य तत्व के रुप में स्वीकार किया तथा उसके औचित्यानुसार प्रयोग पर बल दिया है। काव्य में संगीत की अनिवार्यता को स्वीकरते हुये डॉ0 दीनदयालु गुप्त कहते है–

गायक कवि को अपने पदों को विशेष राग विशेष स्वरों से मण्डित करके उन्हें ताल में बाँधना होता है, ताल–बद्ध रूप प्रदान करना होता है। अतः संगीत के कलात्मक पक्ष के आग्रह के कारण शब्दों में लोच लाना तथा परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। स्वरों का स्थूल स्वरूप, स्वर संगीत, मुक्त स्वरों का निरूपण तथा उसकी स्थापना, किसी निश्चित स्वर से गीत के वाक्य का आरम्भ करके उसे रागात्मक वाक्य का रूप प्रदान करना।

इस प्रकार गीत के वाक्य को संगीतात्मक वाक्य का रूप प्रदान करते हुये एक एक भावात्मक कल्पना को पूरा करते जाना, ताल के आघात के साथ गीत के वाक्यों का सौष्ठव बैठाना तथा रागात्मक लम्बाई का ध्यान रखना, संगीत की इन कलात्मक विशेषताओं कर ध्यान रखने के कारण भ्रमर का भँवरा, माह का महियां आदि विभिन्न उच्चारण बन जाना स्वाभाविक है।[4]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि काव्य और संगीत परस्पर एक दूसरे के पूरक है। काव्य का परम प्रयोजन रस निष्पत्ति है। संगीत उस रस निष्पत्ति में काव्य का महत्त्वपूर्ण सहायक अंग है।

सन्दर्भ :

1. भर्तृहरिशतकत्रयम्, चौखम्बा संस्कृत विद्याभवन, वाराणसी।
2. नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
4. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डॉ. दीनदयालगुप्त, भाग 2, पृ0 881

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 41-44
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

स्मृति का इतिहासलेखन : लोकगीत पद्धति के रूप में

डॉ. नेहा प्रधान
सहायक आचार्य
कैरियर पाइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान।

भारतीय लोक संगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है और इसकी जड़ें वैदिक काल तक जाती हैं। उस समय इन गीतों को "गाथा" कहा जाता था, जिसका आशय गीत या गायन से था। ये गाथाएँ वैदिक मंत्रों से अलग, साधारण लोकधुनों में गाई जाती थीं, जिससे आम जन उनसे सहज रूप से जुड़ सकें। समय के साथ यही गाथाएँ विकसित होकर आगे चलकर लोकगीतों और गाथागीतों के रूप में प्रचलित हो गईं और भारतीय लोक–संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गईं। "जब इतिहास लिखे गए दस्तावेजों से पहले गाया जाता है, तब लोकगीत समाज की स्मृति बन जाते हैं।" इतिहास केवल राजाओं, युद्धों और तिथियों का क्रम नहीं है, बल्कि वह उन अनुभवों, पीड़ाओं, संघर्षों और आशाओं का जीवंत संग्रह है जिन्हें समाज पीढ़ी–दर–पीढ़ी संजोकर रखता है। इस सामूहिक अनुभव को सुरक्षित रखने में लोकगीत एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम रहे हैं। जब औपचारिक इतिहास लेखन आम जनजीवन से दूर था, तब लोकगीतों ने ऐतिहासिक घटनाओं को स्मृति के रूप में जीवित रखा।

लोकगीतों के माध्यम से समाज ने अकाल, युद्ध, विद्रोह, औपनिवेशिक शोषण, सामाजिक आंदोलनों और सांस्कृतिक परिवर्तनों को केवल याद ही नहीं किया, बल्कि उन्हें भावनात्मक अर्थ भी प्रदान किया। ये गीत किसी एक व्यक्ति की स्मृति नहीं होते, बल्कि सामूहिक स्मृति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ इतिहास भावना, अनुभव और पहचान के साथ जुड़ जाता है। इस प्रकार लोकगीत इतिहास का वह अनौपचारिक लेकिन सशक्त स्रोत हैं, जो हमें यह समझने में सहायता करते हैं कि ऐतिहासिक घटनाएँ केवल घटित ही नहीं हुईं, बल्कि समाज द्वारा कैसे महसूस की गईं और कैसे याद रखी गईं। लोकगीतों के अध्ययन के माध्यम से हम इतिहास को केवल अभिलेखों में नहीं, बल्कि जनता की स्मृति और चेतना में घटित होते हुए देख सकते हैं। प्रसिद्ध ललित निबंधकार विद्यानिवास मिश्र ने अपनी कृति में इस भावपूर्ण लोकगीत 'मोरे राम के भीजै मुकुटवा लछिमन के पटुकवा, मोरी सीता के भीजै सेनुरवात राम घर लौटहिं।।' का प्रयोग इस प्रकार किया है जिसमें कौशल्या माता द्वारा जिस प्रकार अपने पुत्र के लिए चिंता व्यक्त की गई है।

उसी की अनुभूति को लेखक ने अपनी पुत्री सदृश्य मेहमान के लिए व्यक्त किया है। लोकगीत केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे समाज की ऐतिहासिक चेतना को स्वर देते हैं। इनमें घटनाएँ तिथियों के रूप में नहीं, बल्कि अनुभूतियों के रूप में सुरक्षित रहती हैं। किसी युद्ध की विजय या पराजय, किसी शासक

की क्रूरता या उदारता, अकाल की पीड़ा या विद्रोह की आग 'ये सब लोकगीतों में प्रतीक, रूपक और भावनात्मक भाषा के माध्यम से स्थान पाते हैं। यही कारण है कि लोकगीत इतिहास के औपचारिक स्रोतों से भिन्न होकर भी उन्हें समझने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसलिए कहा जाता है "जहाँ लिखित इतिहास मौन हो जाता है, वहाँ लोकगीत बोलने लगते हैं।"

भारत के विभिन्न राज्यों में लोकजीवन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाले अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश में रसिया, होरी, सोहर और कजरी प्रमुख हैं, जबकि जम्मू–कश्मीर में भाखा, छकरी और लादिशाह प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्र में लावणी, ओवी और पोवाड़ा, उत्तराखंड में झोड़ा और थड्या, तथा अरुणाचल प्रदेश में जा–जिन–जा और बारयी गाए जाते हैं। गोवा में ओवी, मंडो और बनवरह, पंजाब में टप्पा, भांगड़ा और जुगनी, तथा पश्चिम बंगाल में बाउल, भटियाली और रवींद्र संगीत लोकप्रिय हैं। मध्य प्रदेश का आल्हा, असम का बिहु, तमिलनाडु के विल्लू पट्टू, कुम्मी पट्टू व अम्मानैवारी, कर्नाटक के भावगीते और जानपद गीते, गुजरात के डांडिया और गरबा, राजस्थान के पानीहारी, मांड और तीज, छत्तीसगढ़ की पंडवानी, केरल के भूत गीत, मणिपुर के साना लामोक व खोंगजोम पर्व, मिजोरम के सैकुति जाई, सिक्किम के घा–तो–कीटो, बिहार का सुकर के बियाह, झारखंड का डोमकाच, हिमाचल का लेमैन, ओडिशा का दस्काथिया और आंध्र प्रदेश की बुर्रा कथा– ये सभी लोकगीत भारत की सांस्कृतिक विविधता और लोक परंपराओं को जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय संदर्भ में, लोकगीतों ने सदियों तक उस इतिहास को सुरक्षित रखा है, जो शासकीय अभिलेखों में दर्ज नहीं हो सका। उदाहरणस्वरूप, राजस्थान और बुंदेलखंड के लोकगीत 19वीं शताब्दी के अकालों की स्मृति को आज भी जीवित रखते हैं। इन गीतों में सूखे खेत, भूख से बिलखते बच्चे, पलायन करते परिवार और शासन की उदासीनता का मार्मिक चित्रण मिलता है। ये गीत अकाल को केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के रूप में प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों की विशेषता यह है कि वे सत्ता के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि सामान्यजन के अनुभवों से इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। जहाँ राजकीय अभिलेख विजेताओं की कहानी कहते हैं, वहीं लोकगीत पराजित, उपेक्षित और हाशिए पर खड़े लोगों की स्मृति को जीवित रखते हैं। इस दृष्टि से लोकगीत इतिहास के "नीचे से लिखे गए" रूप (History from Below) का सशक्त उदाहरण हैं।

"लोकगीतों में इतिहास तर्क से नहीं, संवेदना से संरक्षित होता है।" लोकगीतों के माध्यम से ऐतिहासिक घटनाएँ केवल सूचनात्मक नहीं रहतीं, बल्कि वे सामूहिक भावना का हिस्सा बन जाती हैं। उदाहरणस्वरूप, 1857 के विद्रोह से जुड़े लोकगीत उत्तर भारत में आज भी गाए जाते हैं। रानी लक्ष्मीबाई पर रचे गए लोकगीत उनके शौर्य और बलिदान को केवल ऐतिहासिक तथ्य के रूप में नहीं, बल्कि नारी–वीरता और जनप्रतिरोध की सामूहिक स्मृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनमें रानी को राजसत्ता की प्रतिनिधि नहीं, बल्कि जनता की रक्षक के रूप में देखा जाता है। इसी प्रकार, संथाल विद्रोह (1855–56) से जुड़े आदिवासी लोकगीत औपनिवेशिक शोषण, विस्थापन और संघर्ष की स्मृति को स्वर देते हैं। ये गीत उस इतिहास को सामने लाते हैं, जिसे मुख्यधारा के लिखित इतिहास में अक्सर सीमित स्थान मिला। औपनिवेशिक काल में किसानों और मजदूरों द्वारा गाए गए लोकगीत 'विशेषकर नील विद्रोह से जुड़े गीत' ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों, बेगार और अत्याचारों को उजागर करते हैं। इन गीतों में शोषण के विरुद्ध आक्रोश और प्रतिरोध की चेतना स्पष्ट दिखाई देती है।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोकगीत राजनीतिक चेतना के प्रसार का प्रभावी माध्यम बने। गांधीजी,

स्वदेशी आंदोलन, सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन पर आधारित लोकगीतों ने राष्ट्रवाद को भावनात्मक आधार प्रदान किया। ये गीत निरक्षर जनसमूह तक स्वतंत्रता के विचारों को पहुँचाने में सहायक बने और बलिदान, त्याग तथा एकता की स्मृति को जनमानस में स्थायी रूप से स्थापित किया। ऐसा ही एक लोकगीत था नूरपुरी का 'ऐथों उड़ जा भोल्या पंछिया' जिसने किसानों को अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ जाग्रत किया। इन गीतों में बार–बार दोहराव (repetition) स्मृति को स्थायित्व प्रदान करता है। दक्षिण के मराठी लोकगीत 'कार सागर प्रण तलमल्ता' भी इन्हीं में से एक है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी गाए जाने वाले ये लोकगीत इतिहास को निरंतर पुनर्जीवित करते रहते हैं, जिससे अतीत वर्तमान का हिस्सा बन जाता है। यह प्रक्रिया सामूहिक स्मृति को सुदृढ़ करती है और समाज की ऐतिहासिक पहचान को आकार देती है।

"जो समाज अपने गीतों को भूल जाता है, वह अपने इतिहास से भी कटने लगता है।" लोकगीत सामूहिक स्मृति के साथ–साथ सामूहिक पहचान का भी निर्माण करते हैं। किसी क्षेत्र, जाति, समुदाय या वर्ग के लोकगीत उस समूह के ऐतिहासिक अनुभवों को साझा करते हैं और उन्हें एक सांस्कृतिक इकाई में बाँधते हैं। उदाहरणस्वरूप, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी या आदिवासी लोकगीत अपने–अपने क्षेत्रीय इतिहास और संघर्षों को सामूहिक चेतना में संरक्षित रखते हैं। ऐसे ही एक लोकगीत की रचना उर्चिन ने की थी 'टोडी टोडी बच्चे रे तेरी ऐसी की तेसी' ने जनमानस में आजादी की भावना का शंखनाद किया। इस प्रकार लोकगीत केवल अतीत का स्मरण नहीं, बल्कि सामाजिक एकता और ऐतिहासिक निरंतरता का माध्यम बनते हैं। इतिहास के अध्ययन में लोकगीतों को शामिल करना हमें यह समझने में सहायता करता है कि इतिहास केवल सत्ता द्वारा रचित आख्यान नहीं है, बल्कि वह समाज की स्मृति में जीवित एक सतत प्रक्रिया है। लोकगीत इस प्रक्रिया के सबसे सशक्त वाहक हैं – जो इतिहास को गाकर, महसूस कराकर और याद रखकर आगे बढ़ाते हैं।

"लोकगीत इतिहास के स्रोत ही नहीं, इतिहास को देखने की एक पद्धति भी हैं।" इतिहासलेखन में परंपरागत रूप से राजकीय अभिलेखों, यात्रावृत्तांतों और औपचारिक दस्तावेजों को प्रमुख स्रोत माना गया है। किंतु इन स्रोतों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वे प्रायः सत्ता–केंद्रित दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। ऐसे में लोकगीत इतिहासलेखन के लिए एक वैकल्पिक और पूरक पद्धति प्रस्तुत करते हैं, जो समाज के सामान्य जन की स्मृति, अनुभव और दृष्टि को इतिहास का हिस्सा बनाती है। लोकगीतों की पद्धतिगत उपयोगिता इस तथ्य में निहित है कि वे इतिहास को घटना के रूप में नहीं, अनुभव के रूप में दर्ज करते हैं। जहाँ लिखित इतिहास यह बताता है कि क्या हुआ, वहीं लोकगीत यह उजागर करते हैं कि उस घटना को समाज ने कैसे जिया और महसूस किया। इस प्रकार लोकगीत ऐतिहासिक घटनाओं के भावनात्मक, सामाजिक और नैतिक आयामों को समझने में सहायक होते हैं।

1. 'नीचे से इतिहास' (History from Below) की पद्धति :

लोकगीत इतिहासलेखन की उस पद्धति को सुदृढ़ करते हैं जिसे 'नीचे से इतिहास' कहा जाता है। ये गीत किसानों, श्रमिकों, स्त्रियों, आदिवासियों और अन्य हाशिए के समुदायों की आवाज को सामने लाते हैं। उदाहरणस्वरूप, अकाल, नील विद्रोह या संथाल विद्रोह से जुड़े लोकगीत यह स्पष्ट करते हैं कि इन घटनाओं का प्रभाव आम जनजीवन पर क्या पड़ा।

2. मौखिक परंपरा और दीर्घकालिक स्मृति :

लोकगीत मौखिक परंपरा का हिस्सा होते हैं और पीढ़ी–दर–पीढ़ी गाए जाते हैं। इस निरंतरता के कारण वे इतिहास की दीर्घकालिक स्मृति को सुरक्षित रखते हैं। इतिहासलेखन की पद्धति के रूप में लोकगीत यह समझने में सहायक हैं कि समाज किन घटनाओं को याद रखना चाहता है और किन्हें भूल जाना। इस चयन प्रक्रिया के माध्यम से सामूहिक चेतना और सामाजिक प्राथमिकताओं का अध्ययन संभव होता है। यद्यपि लोकगीत इतिहासलेखन के लिए अत्यंत उपयोगी हैं, फिर भी उनकी पद्धतिगत सीमाओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लोकगीतों में अतिरंजन, प्रतीकीकरण और कालान्तर में परिवर्तन संभव है। इसलिए इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि वह लोकगीतों का उपयोग अन्य स्रोतों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से करे।

संदर्भ-सूची :-

1. चौधरी, के. एन. (2009). इतिहास और संस्कृति. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान. (विशेषतः पृ. 112–130)
2. चक्रवर्ती, रणजीत (2011). इतिहासलेखन : सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली : पीयरसन इंडिया. (पृ. 85–102)
3. शर्मा, रामशरण (2001). भारतीय इतिहास की समस्याएँ. नई दिल्ली : ओरिएंट लॉन्गमैन. (पृ. 47–63)
4. पाणिग्रही, के. सी. (1992). लोकसंस्कृति और इतिहास. कटक : ग्रंथ निकेतन. (पृ. 21–45)
5. दुबे, एस. एन. (1998). परंपरा, लोक और इतिहास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. (पृ. 90–118)
6. वर्मा, हजारीप्रसाद (2006). लोकजीवन और साहित्य. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. (पृ. 134–156)
7. पांडेय, ज्ञानेंद्र (2006). स्मृति, इतिहास और राष्ट्र. नई दिल्ली : स्थायी प्रकाशन. (पृ. 55–78)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 45–49
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

भारतीय संगीत में संतों का योगदान

डॉ. निधि वर्मा
सहायक प्राध्यापक
नवीन शासकीय संगीत महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

सार :

मराठी काव्य परंपरा का प्रारंभ संत काव्य से हुआ, जो ज्ञानदेव से तुकाराम तक विस्तृत वारकरी भक्ति धारा के साथ परिपक्वता को प्राप्त हुआ। नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे वारकरी संतों की काव्य परंपरा ने अन्य मराठी कवियों को प्रेरित किया। समर्थ रामदास ने भक्ति साहित्य के सार्वभौमिक दर्शन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक विस्तृत इस संतकाव्य धारा ने गहन, सशक्त और समृद्ध विचारधारा प्रस्तुत की, जिसमें भक्ति, उपासना और मानव कल्याण ही मूल सूत्र रहे।

संतकवियों ने बहुजन समाज को मोक्ष–सुलभ बनाने हेतु ईश्वर–मीमांसा को भक्ति–साधना का अभिन्न अंग बनाया। उनकी काव्य–रचना में सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों आयाम समाहित थे। विविध संप्रदायों के प्रभुत्व के बावजूद वैमनस्य का अभाव था, किंतु साम्प्रदायिक निष्ठा के साथ–साथ समाज की व्यथा ने उन्हें काव्य–सृजन की ओर प्रेरित किया। प्रत्येक संत का जीवन जन–जीवन से अभिन्न हो गया था।

जातिवाद और वर्ण–व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन असंभव मानकर संतकवियों ने धार्मिक चिंतन को मानवतावादी आधार प्रदान किया। समाज की मानसिकता परिवर्तन के लिए उन्होंने कीर्तन, उपदेश और लोक परंपराओं को अपनाया। पंढरपुर वारी इस क्रांतिकारी प्रक्रिया का आधार बनी। संतों ने भक्ति के माध्यम से समाज के दुख–दर्द को अभिव्यक्त किया और प्रत्येक अपने समय की 'जननी' बनकर मातृ–करुणा से समाज को एकजुट करने का प्रयास किया।

अंधविश्वासों का खंडन कर मानवता की सर्वत्र वकालत करते हुए उन्होंने कीर्तन को सामाजिक जागरण का सशक्त माध्यम बनाया। 'नाचू कीर्तनाचे रंगी, ज्ञानदीप लावू जगी'[1] की भावना से संतकवि समाज के साथ समरस हो गए। कीर्तन का नृत्य अज्ञान की कालिख मिटाकर ज्ञान, चरित्र और सद्भाव का प्रकाश फैलाता है। इस प्रकार संतकाव्य ने न केवल धार्मिक चेतना को जागृत किया, बल्कि सामाजिक समरसता और मानवीय मूल्यों की स्थापना का भी प्रयास किया।

बीज शब्द : संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत नामदेव, समर्थ रामदास।

मूल आलेख :

प्रत्येक युग के संतकवि अपने समाज के दर्पण और जागरणकर्ता बने। भावुक हृदय वाले इन संतों ने

ज्ञान और चेतना का संचार किया। पौराणिक कर्मकांडों के अतिरेक, रूढ़िवादिता, आर्थिक विपन्नता, प्राकृतिक आपदाओं और चक्रवर्ती आक्रमणों से त्रस्त समाज में संतकवियों ने पहचान और आत्मविश्वास जागृत करने की भूमिका निभाई। वे आध्यात्मिक साधक होते हुए भी कवि के रूप में सक्रिय रहे। 'बुडती हे जन, न देखवे डोळा'[2] – इस करुण हृदयस्पर्शी पंक्ति से संतकवि ने समाज की दयनीय दशा का चित्रण किया, जिसे पढ़कर पाठक नेत्र मिलाने से भी विमुख हो जाते हैं। उनका काव्य न केवल साहित्यिक सौंदर्य का वाहक है, बल्कि साधना का भी माध्यम है। यह काव्य सांस्कृतिक परिवेश में पल्लवित हुआ, जो समान रूप से आध्यात्मिक और सामाजिक दोनों आयामों को समाहित करता है।

सभी मराठी संतों ने ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष को ही अपनी साधना का अंत माना है। उन्होंने मंगलत्व की प्राप्ति के लिए साधना की। आत्मज्ञान के पथ पर चलते हुए उन्होंने मुमुक्षु को अपना सहयात्री बनाकर मेल–मिलाप और लोक कल्याण की भावना से अनेक रचनाएँ कीं। संतों ने ब्रह्मांड के रहस्य, जीव जगत और ईश्वर के बीच संबंध का पता लगाया। साथ ही समाज की जनसंख्या पर भी विचार किया गया है और यह विचार जितना शाश्वत है उतना ही कालसापेक्ष भी है। उन्होंने स्वधर्म की रक्षा की भूमिका निभाई है। चूँकि पारलौकिक मोक्ष प्राप्त करने के लिए की जाने वाली साधना इसी सांसारिक जीवन में पूरी होगी, इसलिए सभी संतों ने नरदेह के बारे में कई कथन दिए हैं और इसके महत्व को समझाने की कोशिश की है। भक्ति की सहायता से व्यक्ति भौतिक संसार और निराकार कक्षाओं, संतों (ज्ञानदेवों) की भूमिका को जान सकता है।

इसके लिए 16वें अध्याय (ज्ञानेश्वरी) में दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा का वर्णन देखना चाहिए। अथवा आपको दशबोध में उत्तमपुरुषलक्षण, मुर्खलक्षण के समास को देखना चाहिए। पसायदान के दर्शन को मूल्यों का समुच्चय माना जाना चाहिए। संत साहित्य द्वारा मानव जीवन की मूल्य प्रणाली, व्यक्तित्व विकास और एक सामंजस्यपूर्ण समाज का प्रतिपादन किया गया है। भले ही पंथ अलग–अलग थे, दर्शन अलग–अलग थे, लेकिन मानव कल्याण के एक ही लक्ष्य से प्रेरित होकर संत एकता के सूत्रधार बने। संतों ने सांस्कृतिक एकीकरण, लोक विधान की चाहत, मानवतावाद का पुरस्कार, लोक संग्रह, लोकसाहित्य लोक जीवन के प्रबंधन के लिए अपना जीवन बेच दिया। इसके लिए उन्हें कष्ट भी सहना पड़ा, लेकिन वे अपने लक्ष्य और उद्देश्यों से पीछे नहीं हटे। लोगों का मानस उनके निजी जीवन और कर्मों से गहन रूप से प्रभावित होता है। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे संतों के जीवन और साहित्य की गहनता–असामान्यता का वर्णन शब्दों के परे है। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन को ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ा। 'हे विश्वाची माझे घर' के माध्यम से ज्ञानदेव ने वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को साकार किया। 'दिसो परतत्त्व डोळा, पाहो सुखाचा सोहळा'[3] में उन्होंने समाज को आनंदमय दृष्टि प्रदान की।

मराठी साहित्य परंपरा भारतीय आध्यात्मिक चेतना का पवित्र प्रतीक है, जिसने शताब्दियों तक समाज का मार्गदर्शन किया। संतों ने भक्ति को सामाजिक एकीकरण का सूत्र बनाया। 'देह मंदिर आत्मा'[4] के सिद्धांत से उन्होंने देह–मन की समानता स्थापित की। नामस्मरण और नामभक्ति के माध्यम से विठोबा प्रत्येक बालक बन गए। आषाढ़ी–कार्तिकी वारी के पदन्यास ने समाज को अखंड भक्ति–सूत्र में बांध दिया।

संतकवियों ने प्रमाणित किया कि ईश्वर के समक्ष कोई श्रेष्ठ–निम्न नहीं। उनकी जीवनियाँ दर्शाती हैं कि सच्ची भक्ति ही सामाजिक कलह, जातिवाद और आर्थिक विपन्नता से मुक्ति का मार्ग है। 'आम्ही वारीकरी सेना

नाई, ऊस डोंगरपारी, कांदामुळाभाजी सावतामाळी'[5] –सभी वर्ण–वृत्ति के लोग विठ्ठल–भक्ति में समाहित हो गए। मुक्ताबाई, जनाबाई, सोयराबाई, निर्मला ने 'दलिता कंदिता तुज गायिन अनंत'[6] कहकर भक्ति को सर्वसमावेशी बनाया।

संतों ने लोकतांत्रिक जीवन–संस्कृति को साकार किया। भजन–कीर्तन, उपदेश और लोक परंपराओं को आत्मसात कर उन्होंने काव्य–सृजन किया। लोकगीत, त्योहार, ग्रामीण प्रथाओं को भक्तिमार्ग के माध्यम से प्रस्तुत कर सामाजिक जागरण का कार्य किया। व्यक्तिपरकता के बजाय समूह–निष्ठा को प्राथमिकता देकर वे समाज के साथ एकरूप हो गए। महाराष्ट्र का समाज भक्ति–सूत्र में एकजुट और संगठित हो गया।

संतकवियों ने ज्ञानदेव के आदर्शवाद, नामदेव के प्रचार–उपदेश, एकनाथ के समन्वयवादी दृष्टिकोण, पंडितकवियों की पौराणिक कथात्मकता, तुकाराम के विद्रोही स्वर और रामदास की वीरतापूर्ण चुनौती को आत्मसात कर तर्कसंगत नैतिक चिंतन का निर्माण किया। उनकी नैतिकता विवेक, चरित्र की अखंडता, ईश्वर–विश्वास और मानवताप्रेम पर आधारित थी। तुकाराम का काव्य भाषा को हथियार की तीक्ष्णता और फूल की कोमलता प्रदान करता है।

महाराष्ट्र के सांस्कृतिक निर्माण में संतकाव्य का योगदान अभूतपूर्व है। सदाचार, सद्भाव, अपरिग्रह, अहिंसा, करुणा, प्रेम, भक्ति, सत्यनिष्ठा, नम्रता, आत्मसंयम–इन मूल्यों का उद्घोष संतकाव्य का मूलमंत्र बना। अनासक्ति, विवेक, दया, क्षमा, शांति के संदेशों ने समाज को दिशा प्रदान की।

मध्यकालीन धार्मिक संतों का आत्मविश्वासपूर्ण और सौहार्दपूर्ण जीवन सामाजिक जागरण का प्रतीक है। गरीबी और सामाजिक विपन्नता से ग्रस्त लाखों लोगों के जीवन में भक्ति और आध्यात्मिकता का संचार संतों ने किया। संत प्रशस्ति, भक्त चरित्र, ईश्वरगुण–लीलावर्णन को कीर्तन के माध्यम से आदर्श उपदेश के रूप में प्रस्तुत किया गया। संतों का वैराग्यपूर्ण व्यक्तित्व उनकी वाणी को हल्कापन प्रदान करता था। उनका दृष्टिकोण ईमानदारी, परोपकारिता, उदारता, सहनशीलता और करुणा से परिपूर्ण था। इसीलिए हर युग का समाज उनका अनुसरण करता रहा और उनका साहित्य आस्था का प्रतीक बन गया।

रामदास के अनुसार, कवि युगधर्म का निर्माणकर्ता है। साहित्य और सामाजिक मामलों में उनकी भूमिका अभूतपूर्व है। 'कवि ब्रह्मांड रचने वाले देवता हैं' –इस दृष्टिकोण ने संतकाव्य को सांस्कृतिक उत्थान का सशक्त माध्यम बनाया। संतकवि केवल कवि नहीं, समाज के प्रहरी, नैतिक मार्गदर्शक और मानवतावादी चिंतक भी थे। संतसाहित्य ने एक बहुजन समाजोन्मुख धार्मिक मंदिर एवं भक्ति मंदिर की स्थापना की है। इसकी नींव तेरहवीं शताब्दी में रखी गई थी और इसका निर्माण सत्रहवीं शताब्दी में रामदास–तुकाराम ने करवाया था। संतकवि का लक्ष्य सभी को ज्ञान देना था और इसके लिए उन्होंने अपने काव्य की रचना की। इसकी व्यापकता एवं काव्यात्मकता का जनमानस पर विशेष प्रभाव पड़ा। मध्यकालीन मराठी संत कवियों की प्रतिभा भी ऋतंभरा की ही प्रतिभा थी। उनके शब्द विशकार का उच्चारण किया गया और उनकी बानी को सार्वभौमिकता प्राप्त हुई। स्वानुभूत वाणी को साहित्य का कला रूप प्राप्त हुआ। साहित्य का मानक मध्यकालीन संतों की कविता द्वारा प्रस्तुत किया गया था। मध्यकालीन मराठी साहित्य का स्वरूप समग्रता से जीवन की ओर उन्मुख और भक्ति चिंतन से ओत–प्रोत है।

महाराष्ट्र में रामभक्ति का प्रारंभिक संचार एकनाथ ने किया, जिसे समर्थ रामदास ने बाद में गतिमान

बनाया। भारूड के विविध रूपों के माध्यम से एकनाथ ने जनजागरण का कार्य किया। आसमानी–सुल्तानी संकटों से जूझते समाज में उन्होंने साहस और एकता का संचार किया। विदेशी आक्रमणों से त्रस्त समाज को भक्ति–सूत्र में पिरोकर एकजुट करने वाले एकनाथ को 'अनाथों का नाथ, लोकनाथ' कहा गया।

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न संतों में तुकाराम कंठमणि के रूप में विख्यात हैं। साधारण मनुष्य से सिद्धयोगी तक की उनकी आध्यात्मिक यात्रा अभंगवाणी में साकार हुई। तुकाराम के अभंगों में भाषा और संस्कृति का अद्‌भुत सामंजस्य है। मराठी संतकाव्य की समृद्ध विरासत को उन्होंने सरल, अनगढ़ भाषा में प्रस्तुत किया। 'आम आदमी के सुख–दुख'[6] को उनकी कविता में जीवंत रूप मिला। तुकाराम का अभंग इसलिए निकटवर्ती लगता है क्योंकि यह सांस्कृतिक संघर्ष, अमानवीयता और शाश्वत समस्याओं का प्रतिबिंब है। ज्ञानदेव के आदर्शवाद, नामदेव के स्वप्नभोग और एकनाथ के समन्वयवाद के विपरीत, तुकाराम ने आत्मनिर्भरता को केंद्रीय स्थान दिया। प्रपंच और परमार्थ का उनका सामाजिक विश्लेषण उनकी सत्यनिष्ठा का प्रमाण है।

संतकवियों ने भक्ति को करुणा–मय भगवत् धर्म के साथ काव्यबद्ध किया। नामदेव और चोखामेळा का संपूर्ण परिवार काव्य–सृजन में संलग्न दिखता है। भारतीय संतकाव्य पर मराठी संतकविता, विशेषकर नामदेव की कविता का गहन प्रभाव पड़ा। इस परंपरा ने भक्ति को सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम बनाया।

वतन आमुची मिरास पंढरी। विठोबाचे घरी नांदणूक सेवा करु तेथे नित्या महाद्वारी। नामाच्या उजरी जागवती साधुसंता शरण जाऊ मनोभावे। प्रसाद स्वभावे देती घेती नामा म्हणे आम्ही पायरीचे चिरे। संत पाय हिरे देती वरु।।

संतों ने विठोबा कदम का हिस्सा बनकर खुद को धन्य माना है। तीर्थ विठ्ठल क्षेत्र विठ्ठल देव विठ्ठल देवपूजा विठ्ठल। सभी संतों के काव्य में भरा हुआ प्रतीत होता है। तुकारामशिष्य निलोबा ने कहा है कि विठोबा संतमंडियाली के प्रमुख हैं। विठोबा के बाद, भक्त मंडियाली को ज्ञानदेवों और उनके साहित्य से अत्यधिक प्रेम रहा है।

"विठ्ठल विठ्ठल गजरी। अवघी दुमदुमली पंढरी होतो नामाचा गजर।
दिंडया पताकांचा भारनिवृत्ति ज्ञानदेव सोपान।
अपार वैष्णव ते जाण हरिकीर्तनाची दाटी। तेथे चोखा घाली मिठी।"[7]

ऐसी भावना संत कवियों की है, कितने विनम्र भाव से भगवान में विलीन हो गए हैं।

एक अभंग में एकनाथ कहते हैं कि : **"जनार्दनी पूर्व पुण्य फळले। श्रीगुरूभेटले ज्ञानेश्वर?"**[8]

दत्तोपासना और भानुदास ज्ञानदेव से विठ्ठलोपासना समन्वय नाथों द्वारा किया गया था और उन्होंने जन तोची जनार्दन के रूप में समन्वय की भूमिका निभाई और रचना की थी। भारुड़ से गुमराह लोगों को एकजुट करने का उपदेश दिया। एकनाथ की कविता ज्ञानदेव–नामदेव और तुकाराम–रामदास के बीच एक मजबूत कड़ी है। नाथों ने भक्ति के माध्यम से सांस्कृतिक और धार्मिक परिवर्तन के महत्व को पहचाना और समाज के जनमानस बन गये। उन्होंने पैठण में उपदेश और कीर्तन के माध्यम से समाज को ज्ञानदेव की महानता और महत्व के बारे में आश्वस्त किया, जो भक्ति काव्य का एक अंश है। भागवत जैसी सैद्धांतिक अभंग जैसी व्यावहारिक रचनाएँ और लोक काव्य जैसी प्रायोगिक रचनाएँ नाथों द्वारा प्रभावी ढंग से की गई हैं और इसके संस्कार समाज मानस पर दिखाई देते हैं। एकनाथ ज्ञानदेव को माता का रूप देते हैं।

निष्कर्ष :

मराठी संतकाव्य का स्वरूप बहुआयामी और समृद्ध है, जो सांस्कृतिक परिवर्तन की गतिशीलता को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करता है। संतों की गहन ईश्वर–साधना ने काव्य का अमूर्त रूप धारण कर लिया, जिससे इसकी प्रकृति विविधतापूर्ण हो गई। मराठी संतकाव्य परंपरा न केवल साहित्यिक धरोहर है, बल्कि मराठी संस्कृति और अस्मिता का जीवंत प्रतीक भी है। यह स्मरणीय है कि संतों की रचनाएँ कविता के साथ–साथ पूजा का भी स्वरूप समेटे हैं। यह काव्य आध्यात्मिक अनुभूति और सामाजिक चेतना का अद्‌भुत संगम है।

संदर्भ सूची :

1. https://emarmik.com/3-7-shyamsundar-sonnar-lekh/
2. https://nasayeotikar.blogspot.com/2018/05/35.html
3. श्री ज्ञानेश्वरी ग्रंथ, अध्याय. 13, (1163)
4. अखंडध्याननाम, अध्याय 8. श्लोक–15
5. कांदा मुळा भाजी – संत सावतामाळी महाराज सार्थ अभंग – 1
6. https://www.apnimaati.com/2024/10/blog-post_20.html#
7. https://www.aathavanitli-gani.com/Song/Vitthal_Vitthal_Gajari
8. मराठी काव्य में संत की परंपरा डॉ. शोभणे।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 50-52
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

भारतीय संगीत में रस सिद्धांत का महत्व

सरला साहू
अतिथि व्याख्याता (गायन विभाग)
नवीन शासकीय संगीत महाविद्यालय, दुर्ग।

परिचय :

भारतीय संगीत विश्व की उन प्राचीन परंपराओं में से एक है, जिसने हजारों वर्षों की सांस्कृतिक यात्रा के दौरान निरंतर विकास करते हुए अपनी मौलिकता और आध्यात्मिकता को सुरक्षित रखा है। इसकी उत्पत्ति वैदिक काल में मानी जाती है, जहाँ सामवेद के मंत्रों का गेय स्वरूप भारतीय संगीत का प्रारंभिक आधार बना। वैदिक ऋचाओं में निहित स्वर–संरचना, छंद और भाव–संयोजन ने आगे चलकर राग–संगीत की नींव रखी। भारतीय दर्शन में "नाद–ब्रह्म" की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि ध्वनि ही सृष्टि का मूल तत्त्व है। जब यह ध्वनि स्वर, लय और ताल के माध्यम से संयोजित होती है, तब वह संगीत का रूप धारण करती है। किंतु भारतीय संगीत का उद्देश्य केवल श्रवण–सुख प्रदान करना नहीं है, इसका अंतिम लक्ष्य श्रोता के अंतःकरण में भावोत्पत्ति कर उसे आनंद की अनुभूति तक पहुँचाना है।

भारतीय सौंदर्यशास्त्र में इस आनंद को 'रस' कहा गया है। रस वह स्थिति है जहाँ कलाकार और श्रोता दोनों एक साझा भाव–जगत में प्रवेश करते हैं। इस सिद्धांत का व्यवस्थित प्रतिपादन भरतमुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में किया। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव रस में परिणत होता है।

कश्मीर के महान दार्शनिक अभिनव गुप्त ने रस को 'आलोकीय आनंद' की संज्ञा देते हुए उसे आध्यात्मिक अनुभव के स्तर तक उठाया। उनके अनुसार रस की अनुभूति 'ब्रह्मानंद सहोदर' है, अर्थात् वह ब्रह्मानंद के समान है।

अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय संगीत की आत्मा रस में निहित है।

रस सिद्धांत का दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार :

भरतमुनि का प्रसिद्ध सूत्र –

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"।

रस सिद्धांत का मूल है। विभाव वह कारण है जो भाव को जागृत करता है। अनुभाव वह बाह्य अभिव्यक्ति है जिससे भाव प्रकट होता है और संचारी भाव वे क्षणिक अवस्थाएँ हैं जो स्थायी भाव को पुष्ट करती हैं।

अभिनव गुप्त के अनुसार जब श्रोता अपनी व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठकर भाव में तल्लीन हो जाता

है, तब 'अहंकार' का लोप हो जाता है और रस की अनुभूति होती है। यह स्थिति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गहन एकाग्रता और भावनात्मक समर्पण की अवस्था है।

आधुनिक मनोविज्ञान भी स्वीकार करता है कि संगीत मस्तिष्क के भावनात्मक केंद्रों को सक्रिय करता है और आनंद की अनुभूति उत्पन्न करता है।

नव-रस और उनका विस्तृत विश्लेषण :

भारतीय परंपरा में नौ रस माने गए हैं–श्रृंगार, वीर, करुण, रौद्र, हास्य, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शांत।

श्रृंगार रस :

यह प्रेम, सौंदर्य और माधुर्य का प्रतीक है। ठुमरी, दादरा और ख्याल में इसका व्यापक प्रयोग मिलता है। कोमल स्वरों का प्रयोग इसकी अनुभूति को गहन बनाता है।

वीर रस :

साहस और पराक्रम का द्योतक। तेज लय, ऊँचे स्वर और दृढ़ प्रस्तुति इसके प्रमुख साधन हैं।

करूण रस :

शोक और संवेदना का भाव। विलंबित लय और कोमल स्वरों का प्रयोग इसे मार्मिक बनाता है।

शांत रस :

आध्यात्मिक संतुलन और वैराग्य का प्रतीक। ध्रुपद और भजन शैली में इसकी प्रधानता मिलती है।

अद्‌भुत रस :

विस्मय और आश्चर्य की अनुभूति। तानों और स्वर–विस्तार से यह प्रकट होता है।

अन्य रस नाट्य–संगीत और लोक–संगीत में अधिक स्पष्ट रूप से देखे जाते हैं।

राग और रस का गहन संबंध :

भारतीय संगीत में राग भाव–सृष्टि का केंद्र है।

- दरबारी कान्हड़ा : करुण और गाम्भीर्य।
- मालकौंस : आध्यात्मिकता।
- भूपाली : शांति।
- भैरव : श्रद्धा।
- यमन : माधुर्य।

रागों की समय–परंपरा भी रस से जुड़ी है। प्रातःकालीन राग गंभीर भाव उत्पन्न करते हैं, जबकि रात्रिकालीन राग श्रृंगार या करुण भाव जागृत करते हैं।

भक्ति आंदोलन और रस :

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन ने संगीत को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम बना दिया। भक्ति–रस के माध्यम से संगीत साधना और ईश्वर–भक्ति का साधन बना।

लोकसंगीत और रस :

लोकसंगीत में जीवन के प्रत्येक प्रसंग में रस की उपस्थिति मिलती है। विवाह गीतों में श्रृंगार, लोरियों

में वात्सल्य, वीर गाथाओं में वीर रस स्पष्ट होता है।

पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र से तुलना :

पाश्चात्य संगीत सिद्धांत में 'Emotion' या 'Aesthetic Pleasure' की चर्चा मिलती है, किंतु भारतीय रस सिद्धांत की तरह व्यवस्थित दार्शनिक संरचना वहाँ नहीं मिलती। भारतीय सिद्धांत अधिक समग्र और आध्यात्मिक है।

समकालीन संदर्भ :

आज भी फिल्म–संगीत और मंचीय प्रस्तुतियों में भावानुकूल धुन और राग का चयन किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि रस सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।

विस्तृत निष्कर्ष :

भारतीय संगीत में रस सिद्धांत केवल सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि व्यावहारिक सत्य है। यह संगीत को ध्वनि से अनुभूति में परिवर्तित करता है।

रस के बिना संगीत निर्जीव है, रस ही उसे चेतना, गहराई और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भरतमुनि. नाट्यशास्त्र, पृ. सं. 112–145.
2. शारंगदेव. संगीत रत्नाकर, पृ. सं. 45–78.
3. वि. ना. भातखंडे. हिंदुस्तानी संगीत पद्धति, पृ. सं. 23–40.
4. ओमकारनाथ ठाकुर. संगीतांजलि, पृ. सं. 58–72.
5. डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. सं. 101–125.
6. अभिनव गुप्त. अभिनव भारती, पृ. सं. 210–238.
7. आचार्य विश्वनाथ. साहित्य दर्पण, पृ. सं. 89–105.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 53–55
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

कथक और तबला संगति (संगीत और नित्य)

सीमा ढींगरा, शोधार्थी,
प्रोफेसर वंदना चौबे, शोध निर्देशिका
मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान (भारत)

शोध सारांश :

भारतीय परंपरा में गायन वादन और नृत्य इन तीनों कलाओं के संयोग को ही संगीत कहा गया है। शुद्ध कथक नृत्य में तबला की लय ताल और नर्तक के पदचाप के बीच में उच्च्य स्तरीय कोशल तथा आपसी समझ जिससे मिलकर ही कलात्मक अनुभव को प्रस्तुत किया जाता है। संगीत का भव्य भवन टाल की सुद्रण आधार भूमि (नीव) पर टीका हुआ है, अर्थात् कथक नृत्य व तबला वादन एक दूसरे के पूरक है। एक उत्कृष्ट कोटि का तबलावादक साधारण नर्तकी के प्रदर्शन को भी प्रभावशाली बना देता है। यहाँ हम उन कतिपय बातों पर चर्चा करेंगे जिनकी जानकारी कथक नृत्य के संगति के लिए आवश्यक है।

मुख्य शब्द : नित्य, नर्तक, तबला, मंच, वादक, पदचाप, बोल, प्रदर्शन, ताल, लय, संगीत।

संगीत में ताल का जन्म प्राकृतिक रूप से हुआ है। आदिमानव ने कलकल निनादिनी नादियों में निर्झरों के शाश्वत प्रवाह में, क्रमिक सूर्योदय में ऋतुओ के नियमिक चक्र में जीवन के क्रमिक इन्ही संगीत तालों का अनुभव किया होगा और गति प्रमाण बन्न कर ताल बन संगीत में प्राण फूकने लगी।

तबला का उद्‌गम प्राचीन अवनद्ध वाद्यों के संदर्व में ज्ञात करने पर प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में त्रिपुष्कर से विघटित होकर यह दो हिस्से में बंट गया। एक हिस्से में द्वीपस्वर्मुखी आंकिक और उर्ध्वक व आलिग्या। उर्ध्वमुखी द्विपुष्कर जोड़ी ही आगे चलकर नए परिवेश में मध्यकालीन चित्रों में तबला जोड़ी के रूप में दिखाई पड़ता है। प्राचीन द्विपुष्कर व मध्यकालीन तबला जोड़ी दोनों का अंकन प्रायः नृत्य के साथ बजाते हुए दिखायी पड़ता है।

दिल्ली घराने के उस्ताद सिद्धार्थ खां के दो पौत्र वख्सा खां और भोध खां लखनऊ आए तब इनका सामना तत्कालीन दिग्गज पखवाजियो एवम कथक नृत्य शैली के प्रवीण कलकारों से हुआ। दिल्ली घराने के वादन में कोमलता एवम दो उँगलियों की वादन परंपरा थी जोकि कथक नित्यकारों द्वारा बोलो के साथ पग संचालन करके घुंघरू की झंकार और पैरों की थाप के साथ उत्तम प्रतीत नहीं होता था। अतः कथक नृत्यकारों के साथ तालमेल बैठाने की प्रक्रिया में इन लोगों को कथाकनित्यकारों के थाप के अनुरूप अपने तबले के बोलों में गूँज और खनक स्थापित करना पड़ा।

कथक शब्द का शाब्दिक अर्थ : कथा कहने वाला (कथ = कथा, क = कहो)

कथक की यह लोकोक्ति सर्वप्रचलित है – **"कथक का करे सो कथक कहावे"।**

कथक शब्द संस्कृत के कथा से निकला है जिसका अर्थ है कहानी। इस नृत्य का प्रारंभ प्राचीन मंदिरों में हुई थी और पौराणिक कथाओ को नृत्य और हाव भाव के द्वारा प्रस्तुत करते थे।

मुगल काल में कथक ने राज दरबारों में जगह बनायी, इसमें कुछ फारसी और मध्य एशियाई शैली भी सामिल हुई, यही कारण है कि कथक नृत्य के प्रदर्शन में पखावज की जगह धीरे–धीरे तबला वादन की संगति ने ले लिया।

कथक और तबला का अटूट संबंध है। नृत्य की संगत में सर्वप्रथम तबला वादक को नृत्य के बोलों का प्रचुर मात्रा में ज्ञान होना चाहिए। जहाँ तबला वादक नर्तक को लयबृद्ध (तीन ताल, झप ताल व अन्य किसी ताल) का ढाँचा प्रदान करता है और पैरो की जटिल चाल (तत्कार) के साथ मिलकर मंत्रमुग्ध कर देने वाला सामंजस्य बनाता है।

जिस प्रकार तबले के दस वर्ण होते है ठीक उसी प्रकार कथक नृत्य की अपनी वर्णमाला है जिनसे नृत्य के बोलों की रचना होती हैं

कथक नृत्य में तबला प्रमुख वाद्य यंत्र है जो नर्तक के तत्कार के टुकड़े की गति को दिशा प्रदान करता है, तत्कार के तीन वर्ण है : ता थेई ततं इससे बनने वाले बोल प्रायः निम्लिखित बोल के ही पलटे हैं ता थेई तत थेई आ थेई तत थेई थेईत थेईत थेईथेई थेई तत तत तां प्रायः तबले पर इस प्रकार से बजाया जाता है : ता धा कत धा ता धा कत धा धात धात धा धा धा कत कत धां

कथक नृत्य में नर्तक जब नृत्य के समय भूमि पर अपने पैर से आघात करता है या पटकता है तब तबला वादक अपने वादन से उन बोलों की निकासी दोहराते हुए करता है जिससे जुगलबंधी का रूप भी माना जाता है।

नटवरी टुकड़ो में तिग्धा दिगदिग बोलों की प्रधानता रहती है। जिससे तबले पर तत धा तिरकिट या कट धा तिरकित के रूप मे बजाया जाता है। कतिपय बोलों की निकासी में विशेष तकनीक का प्रयोग भी किया जाता है जैसे "कुकू के लिए पंचों उँगलियों को मिलाकर नाखून की कोर से स्वियाही पर आघात करना या 'थर्र' के लिए सिहाई पर आघात करना और उससे हथौड़ी से फलक से धीरे–धीरे दबाकर कंपन पैदा करना।

कवीत्त छंद प्रायः चतुरस् तीस्र या मिश्र जाती में ही रहते है जिन्हें कहरवा दादरा के ठेके के द्वारा भी बजाया जाता है। कथक नृत्य में सबसे महत्वपूर्ण अंग सम है जहाँ नर्तक एवम तबलावादक एक साथ ताल को पूरा करते है। समर्थ तबलावादक अपनी बुद्धि से वादन शैली के द्वारा कथक नृत्य की श्रृंगारिकता बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। तबला कथक नृत्य के संगत में जो लय निर्धारित करता है वह विलंबित, मध्य एवम द्रुत लय की गति में होता है। तबला के विभिन्न प्रकार की चालें, रेला, लयबाँट, नृत्य के संगत में यह सभी छोटी छोटी चीजें ही सर्वाधिक उपयोग होती है, इन्ही से नृत्य में भराव आता है। कथक नृत्य की संगत करने के लिए तबलावादक को विभिन्न प्रकार की लय कारियाँ, लय जाती वाली परन, तोड़ा टुकड़ो का मुख रूप से अच्छा ज्ञान और अभ्यास होना चाहिए। अतः तबलावादक के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह अधिक समय तक नित्यकारों की संगति में रहे तभी वह व्यावहारिक रूप से समझ पाएगा की नृत्यकार नृत्य में कहाँ क्या चाहता है और उसे कैसे अदा करे।

कथक नृत्य एक खुला नाच है "जिसमें पहले से ही कुछ बँधा हुआ या निर्धारित नहीं रहता मंच पर नर्तक अपनी प्रतिभा के बल पर नए नए लयकरो को संकल्पित कर प्रस्तुत करता जाता है। तबलावादक विभिन्न घराने जैसे जयपुर घराना, बनारस एवम लखनऊ घराने के बोलों के अनुरूप संगति करता है। कथक में लखनऊ तथा बनारस घराना पूरब बाज पीआर आधारित है।

इस प्रकार हम यह देख सकते है कि यह तालबृद्ध संगति है जो कथक नर्तक अपनी भावनाओ को पैरो की चाल को स्पष्ट रूप से दर्शकों तक पहुचने में तबला संगति का अहम् भूमिका होती है जोकि एक सफल नृत्य को मंच पर दर्शक के समक्ष सक्षम बनाता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. आजाद पंडित तीरथराम (2015) कथक ज्ञानेश्वरी।
2. दधीच पुरु (2004) कथक नृत्य शिक्षा, इंदौर बिंदु प्रकाशन।
3. दधीच पुरु (2004) नृत्य निबंध, बिंदु प्रकाशन।
4. आजाद पंडित तीरथराम (2020) कथक दर्पण, नटेश्वर कला मंदिर।
5. गर्ग लक्ष्मीनारायण (2016) कथक नृत्य उत्तर प्रदेश संगीत कार्यालय, हाथरस।
6. शास्त्री बाबू लाल (2024) नाट्यशास्त्र चौकंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 56-59
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

संगीत शिक्षा और सामाजिककरण की प्रक्रिया

डॉ. स्नेहलता शर्मा
सहायक व्याख्याता, समाजशास्त्र,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, रामपुरा कुन्हाड़ी कोटा, राजस्थान।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसका व्यक्तित्व समाज के निरंतर संपर्क और अंतःक्रिया के माध्यम से विकसित होता है। इस प्रक्रिया को समाजशास्त्र में सामाजिककरण कहा जाता है। सामाजिककरण केवल परिवार, विद्यालय या समाज के औपचारिक नियमों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक माध्यमों के द्वारा भी सम्पन्न होता है, जिनमें संगीत का विशेष स्थान है। संगीत न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह मूल्यों, भावनाओं, परंपराओं और सामूहिक चेतना के संप्रेषण का सशक्त माध्यम भी है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एमिल दुर्खीम के अनुसार, "शिक्षा समाज द्वारा व्यक्ति पर किया गया वह प्रभाव है जिसके माध्यम से वह सामाजिक जीवन के लिए तैयार होता है।" इस दृष्टि से संगीत शिक्षा को सामाजिककरण की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि यह व्यक्ति को सामाजिक मानदंडों, सांस्कृतिक प्रतीकों और सामूहिक पहचान से जोड़ती है। संगीत के माध्यम से व्यक्ति न केवल सौंदर्यबोध विकसित करता है, बल्कि अनुशासन, सहयोग, सहनशीलता और सामूहिकता जैसे सामाजिक मूल्यों को भी आत्मसात करता है। प्लेटो ने भी संगीत के सामाजिक महत्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि "संगीत आत्मा को वह आकार देता है, जो समाज चाहता है।" यह कथन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि संगीत शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार, सोच और सामाजिक दृष्टिकोण को प्रभावित करती है।

समाजशास्त्र में सामाजिककरण को व्यक्ति के सामाजिक जीवन में प्रवेश की प्रक्रिया माना जाता है। इसके माध्यम से व्यक्ति समाज के नियमों, मूल्यों, विश्वासों और व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। चार्ल्स हॉर्टन कूले ने सामाजिककरण को "स्व का सामाजिक निर्माण" कहा, जबकि जॉर्ज हर्बर्ट मीड ने इसे प्रतीकात्मक अंतःक्रिया के माध्यम से विकसित होने वाली प्रक्रिया बताया। सामाजिककरण के बिना व्यक्ति सामाजिक जीवन में समायोजन नहीं कर सकता। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है और विभिन्न चरणों में विभिन्न माध्यमों द्वारा प्रभावित होती है। संगीत शिक्षा इन्हीं माध्यमों में से एक है, जो व्यक्ति को समाज से जोड़ने का कार्य करती है।

संगीत : एक सामाजिक और सांस्कृतिक माध्यम :

संगीत केवल ध्वनियों का संयोजन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक अनुभवों, भावनाओं और सांस्कृतिक अर्थों का प्रतीक है। प्रत्येक समाज का अपना संगीत होता है, जो उसकी सामाजिक संरचना, ऐतिहासिक अनुभवों और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है। लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत, धार्मिक संगीत या आधुनिक पॉप

संगीत सभी किसी न किसी रूप में सामाजिक यथार्थ से जुड़े होते हैं। संगीत के माध्यम से समाज अपनी परंपराओं, संघर्षों, विश्वासों और आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। यही कारण है कि संगीत शिक्षा व्यक्ति को समाज की सांस्कृतिक चेतना से जोड़ने का कार्य करती है। संगीत शिक्षा का तात्पर्य केवल गायन या वादन की तकनीक सिखाने से नहीं है, बल्कि इसके अंतर्गत संगीत की समझ, अनुशासन, सौंदर्यबोध और सांस्कृतिक चेतना का विकास भी शामिल है। भारतीय परंपरा में गुरु–शिष्य परंपरा संगीत शिक्षा का प्रमुख आधार रही है, जिसमें केवल कला ही नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों का भी हस्तांतरण होता है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में संगीत को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया है, जिससे बच्चों के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहन मिलता है। संगीत शिक्षा व्यक्ति को आत्म–अभिव्यक्ति का अवसर देती है और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती है। परिवार सामाजिककरण की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार में ही बच्चे का पहला परिचय संगीत से होता है 'लोरी, भजन, लोकगीत या धार्मिक गीतों के माध्यम से। ये संगीतात्मक अनुभव बच्चे के भावनात्मक विकास के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों के बीजारोपण का कार्य करते हैं। परिवार के माध्यम से संगीत शिक्षा बच्चे में सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए, किसी लोक संगीत परंपरा से जुड़े परिवार में बच्चा उसी सांस्कृतिक धारा को आत्मसात करता है, जिससे उसकी सामाजिक पहचान सुदृढ़ होती है। विद्यालय सामाजिककरण की एक औपचारिक संस्था है, जहाँ संगीत शिक्षा संगठित रूप में प्रदान की जाती है। विद्यालयों में संगीत के माध्यम से अनुशासन, सहयोग, सामूहिक कार्य और नेतृत्व जैसे सामाजिक गुणों का विकास होता है। संगीत कार्यक्रम, सामूहिक गायन और सांस्कृतिक गतिविधियाँ छात्रों में सामाजिक सहभागिता को बढ़ाती हैं। इससे छात्रों में 'हम' की भावना विकसित होती है, जो सामाजिक एकता का आधार है।

संगीत शिक्षा व्यक्ति में नैतिक मूल्यों के विकास में भी सहायक होती है। संगीत के माध्यम से करुणा, सहानुभूति, शांति और सहिष्णुता जैसे गुणों का विकास होता है। प्लेटो ने कहा था, "संगीत आत्मा को वह आकार देता है, जो समाज चाहता है।" यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि संगीत शिक्षा व्यक्ति के नैतिक और सामाजिक चरित्र को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संगीत शिक्षा सामाजिककरण के माध्यम से सामूहिक पहचान के निर्माण में सहायक होती है। राष्ट्रीय गीत, देशभक्ति संगीत और धार्मिक भजन व्यक्ति को व्यापक सामाजिक समूह से जोड़ते हैं। जब व्यक्ति सामूहिक रूप से संगीत का अनुभव करता है, तो उसमें सामाजिक एकता और सामूहिक चेतना का विकास होता है। यह प्रक्रिया सामाजिककरण को और अधिक प्रभावशाली बनाती है।

युवा अवस्था सामाजिककरण का एक महत्वपूर्ण चरण है। इस अवस्था में संगीत युवाओं की सोच, जीवन शैली और पहचान को गहराई से प्रभावित करता है। आधुनिक संगीत, रैप, पॉप या फ्यूजन संगीत युवाओं को अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने का मंच प्रदान करता है। संगीत शिक्षा युवाओं को सकारात्मक दिशा प्रदान कर सकती है, जिससे वे सामाजिक उत्तरदायित्व और रचनात्मकता को अपनाते हैं। डिजिटल तकनीक ने संगीत शिक्षा और सामाजिककरण की प्रक्रिया को नए आयाम दिए हैं। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया और डिजिटल संगीत ने संगीत को वैश्विक बना दिया है। अब व्यक्ति विभिन्न संस्कृतियों के संगीत से परिचित हो रहा है, जिससे हाइब्रिड सामाजिक पहचान का निर्माण हो रहा है। यह प्रक्रिया सामाजिककरण को अधिक

व्यापक और जटिल बनाती है।

संगीत शिक्षा और सामाजिक समानता :

संगीत शिक्षा सामाजिक समानता और समावेशन को बढ़ावा देने का एक प्रभावशाली माध्यम बन सकती है, क्योंकि यह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सीमाओं को पार करने की क्षमता रखती है। संगीत एक ऐसी सार्वभौमिक भाषा है, जो जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और क्षेत्रीय भेदों से ऊपर उठकर लोगों को आपस में जोड़ती है। जब विभिन्न सामाजिक वर्गों और समुदायों के लोग संगीत शिक्षा और सामूहिक संगीत गतिविधियों में भाग लेते हैं, तो उनके बीच आपसी समझ, सहिष्णुता और सहयोग की भावना विकसित होती है। इस प्रकार संगीत शिक्षा सामाजिक विभाजनों को कम करने और सामाजिक एकता को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से संगीत शिक्षा को सामाजिक समावेशन का साधन माना जा सकता है, क्योंकि यह हाशिए के समुदायों 'जैसे दलित, आदिवासी और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग' के लिए संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहा, बल्कि यह अपने अनुभवों, संघर्षों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने का माध्यम भी रहा है। विशेष रूप से दलित और जनजातीय आंदोलनों में संगीत ने सामाजिक चेतना जागृत करने और सामूहिक संघर्ष को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित चेतना से जुड़े गीतों और भजनों ने सामाजिक अन्याय, भेदभाव और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का कार्य किया है।

इसी प्रकार, जनजातीय समुदायों के पारंपरिक गीत और नृत्य उनकी ऐतिहासिक स्मृति, सामूहिक पहचान और सामाजिक एकजुटता को बनाए रखने का साधन रहे हैं। जब इन संगीत रूपों को शिक्षा के माध्यम से मान्यता और स्थान मिलता है, तो यह सामाजिक समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त, संगीत शिक्षा आत्मविश्वास और आत्मसम्मान के विकास में भी सहायक होती है। जब हाशिए के वर्गों के बच्चों को अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को सीखने और प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है, तो वे स्वयं को समाज का सक्रिय और मूल्यवान सदस्य अनुभव करते हैं। यह प्रक्रिया सामाजिक सशक्तिकरण (Social Empowerment) को बढ़ावा देती है और असमानताओं को चुनौती देती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि संगीत शिक्षा को समावेशी, लोकतांत्रिक और संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ लागू किया जाए, तो यह सामाजिक समानता के निर्माण का एक सशक्त साधन बन सकती है। यह न केवल समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संवाद स्थापित करती है, बल्कि सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक विविधता को भी प्रोत्साहित करती है।

सबसे महत्वपूर्ण आलोचना संगीत के बढ़ते व्यावसायीकरण से संबंधित है। आधुनिक पूँजीवादी समाज में संगीत एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के बजाय एक बाजार उत्पाद के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। मनोरंजन उद्योग द्वारा निर्मित संगीत में सामाजिक सरोकारों, नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक गहराई के स्थान पर उपभोक्तावादी मानसिकता, त्वरित लोकप्रियता और लाभ को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार का संगीत युवाओं के सामाजिककरण को सतही बनाता है और उन्हें सामूहिक चेतना के बजाय व्यक्तिगत उपभोग और प्रदर्शन की संस्कृति की ओर उन्मुख करता है। परिणामस्वरूप संगीत शिक्षा का मूल उद्देश्य 'सांस्कृतिक और नैतिक विकास' कई बार पीछे छूट जाता है। दूसरी महत्वपूर्ण आलोचना सामाजिक असमानता से जुड़ी हुई है। संगीत शिक्षा तक पहुँच सभी सामाजिक वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं है। उच्च वर्ग और शहरी पृष्ठभूमि के बच्चों को औपचारिक संगीत शिक्षा, महंगे संस्थान और आधुनिक संसाधन आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं,

जबकि ग्रामीण, आर्थिक रूप से कमजोर और हाशिए के समुदायों के लिए संगीत शिक्षा सीमित रह जाती है। इससे संगीत शिक्षा सामाजिक समावेशन का माध्यम बनने के बजाय सामाजिक विभाजन को प्रतिबिंबित करने लगती है। पियरे बॉर्दियू के सांस्कृतिक पूँजी के सिद्धांत के अनुसार, ऐसी असमानताएँ सामाजिक संरचना को और अधिक स्थायी बना देती हैं।

इसके अतिरिक्त, कुछ आलोचक यह भी मानते हैं कि संगीत शिक्षा कभी–कभी प्रभावी संस्कृति (Dominant Culture) को बढ़ावा देती है, जिससे स्थानीय और लोक संगीत परंपराएँ हाशिए पर चली जाती हैं। औपचारिक शिक्षा संस्थानों में प्रायः चयनित शैलियों को ही 'श्रेष्ठ' माना जाता है, जिससे विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की उपेक्षा होती है। यह स्थिति सामाजिककरण की प्रक्रिया को एकांगी बना देती है और सांस्कृतिक विविधता को कमजोर करती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि संगीत शिक्षा, यद्यपि सामाजिककरण का एक महत्वपूर्ण साधन है, फिर भी इसके आलोचनात्मक पक्षों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आवश्यक है कि संगीत शिक्षा को केवल बाजार या विशेष वर्गों तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक समानता, सांस्कृतिक विविधता और नैतिक मूल्यों के संरक्षण का माध्यम बनाया जाए। तभी संगीत शिक्षा सामाजिककरण की एक समावेशी और संतुलित प्रक्रिया के रूप में सार्थक सिद्ध हो सकेगी।

संदर्भ सूची :–

1. बोर्दियू, पियरे. (2004). सांस्कृतिक पूँजी और सामाजिक असमानता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 45–62।
2. दुर्खीम, एमिल. (2008). शिक्षा और समाज. (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशंस, पृ. 71–89।
3. फ्रेयर, पाउलो. (2010). उत्पीड़ितों की शिक्षा पद्धति. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 101–118।
4. ग्राम्शी, एंटोनियो. (2015). संस्कृति, वर्चस्व और शिक्षा. नई दिल्ली : सेज हिंदी, पृ. 56–74।
5. कुमार, विवेक. (2016). दलित चेतना और सांस्कृतिक आंदोलन. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 133–150।
6. मीड, जॉर्ज हर्बर्ट. (2009). मन, आत्म और समाज. (हिंदी अनुवाद). जयपुर : एटलांटिक पब्लिशर्स, पृ. 92–110।
7. मिश्रा, शिवकुमार. (2018). संगीत, संस्कृति और समाज. वाराणसी : चौखंबा प्रकाशन, पृ. 27–44।
8. शर्मा, रामअवतार. (2017). भारतीय समाज में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्ली : मैकग्रा–हिल इंडिया, पृ. 165–182।
9. सिंह, योगेन्द्र. (2012). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशंस, पृ. 201–220।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 60-63
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

वैश्विक बाल–संगीत परंपराओं के संदर्भ में हिंदी नर्सरी राइम्स का संगीतात्मक अध्ययन

आर. आर. सौमियाश्री
शोधार्थी, उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।

1. प्रस्तावना :

बाल–साहित्य का संगीतात्मक आयाम – विशेषकर नर्सरी राइम्स (बाल–गीत/बाल कविताएँ) – शिशु एवं पूर्व–बाल्यावस्था में भाषा, स्मृति, भावनात्मक सुरक्षा तथा सांस्कृतिक संलग्नता के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाता है। विश्वभर में नर्सरी राइम्स अलग–अलग भाषायी ओर संगीतात्मक परंपराओं के अनुरूप विकसित हुए हैं, परन्तु भारत में हिंदी नर्सरी राइम्स की संगीतात्मक विशेषताएँ – लोक–तत्त्व, लयात्मकता, दोहराव और सांस्कृतिक संदेश – एक मिश्रित पहचान प्रस्तुत करती हैं जो स्थानीय तथा वैश्विक प्रवाहों (हॉकिंग/आधुनिक मीडिया) के साथ संवाद में रहती है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य हिंदी नर्सरी राइम्स को वैश्विक बाल–संगीत परंपराओं के संदर्भ में संगीतात्मक दृष्टि से विश्लेषित कर, उनकी विशेषताओं, उपयोगिता तथा समकालीन परिवर्तन की विवेचना प्रस्तुत करना है।

2. शोध के उद्देश्य :

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य हिंदी नर्सरी राइम्स की संगीतात्मक संरचना – लय, ताल, तुकबंदी तथा सरल स्वर–विन्यास – का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उसे वैश्विक बाल–संगीत परंपराओं के संदर्भ में समझना है। इसके अंतर्गत यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार हिंदी नर्सरी राइम्स में निहित संगीतात्मक तत्त्व बाल–भाषा अर्जन, स्मृति–विकास और भावनात्मक संलग्नता को प्रभावित करते हैं तथा वे पाश्चात्य नर्सरी राइम्स से संरचनात्मक और सांस्कृतिक स्तर पर किस प्रकार समानता और भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। साथ ही, शोध का उद्देश्य डिजिटल युग और वैश्वीकरण के प्रभाव में हिंदी नर्सरी राइम्स के संगीतात्मक रूपांतरण की पड़ताल करना है, ताकि यह देखा जा सके कि समकालीन माध्यमों में उनकी मौलिक सांस्कृतिक पहचान किस हद तक संरक्षित या परिवर्तित हो रही है।

3. शोध पद्धति :

यह शोध गुणात्मक–निमित (Qualitative-Descriptive) पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों में NCERT के बाल–गीत संग्रह, लोकप्रिय हिंदी नर्सरी राइम्स के लिखित एवं ऑडियो संस्करण तथा यूट्यूब/डिजिटल

संकलन शामिल किए गए। द्वितीयक स्रोतों के रूप में अंतरराष्ट्रीय और भारतीय शोध–पत्र, भाषाविज्ञान एवं संगीतशास्त्र संबंधी ग्रंथ तथा मीडिया–अध्ययन के लेखों का संदर्भ लिया गया।

4. विश्लेषण : हिंदी नर्सरी राइम्स की संगीतात्मक विशेषताएँ :

हिंदी नर्सरी राइम्स की संगीतात्मकता केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि वह बाल–मन, भाषा और संस्कृति के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाती है। इनके भीतर निहित लय, तुक, ताल, ध्वन्यात्मक सौंदर्य और लोक–संगीतीय संकेत बच्चों की ग्रहणशीलता के अनुरूप रचे गए हैं। नीचे इस संगीतात्मक संरचना का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत है –

4.1. लय (Rhythm) और पुनरावृत्ति (Repetition) :

हिंदी नर्सरी राइम्स की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी सरल, स्पष्ट और चक्रीय लय है। लय बच्चों के लिए स्मरण–सहायक होती है और सामूहिक गायन को सहज बनाती है।

"मछली जल की रानी है,
जीवन उसका पानी है।"

यहाँ दो पंक्तियों में समान मात्रात्मक प्रवाह और समान ध्वनि–संरचना है। "है" की पुनरावृत्ति लयात्मक स्थिरता उत्पन्न करती है। यह तालात्मक दोहराव बच्चों को बिना किसी औपचारिक प्रशिक्षण के गीतात्मक अनुभव देता है।

बाल–मनोविज्ञान के अनुसार, ऐसी पुनरावृत्ति बच्चे के श्रवण–स्मृति (Auditory Memory) को सुदृढ़ करती है और भाषा–अर्जन की प्रक्रिया को तेज करती है।

4.2. तुकबंदी (Rhyme) और ध्वन्यात्मक सौंदर्य :

तुकबंदी हिंदी नर्सरी राइम्स का केंद्रीय तत्व है। अंतिम शब्दों की ध्वनि–समानता बच्चों को शब्दों के बीच संबंध पहचानने में सहायता करती है।

"आलू कचालू बेटा कहाँ गए थे,
बैंगन की टोकरी में सो रहे थे।"

यहाँ "थे–थे" की तुक और आंतरिक ध्वनि–साम्य (क–ल–ट ध्वनियाँ) ध्वन्यात्मक खेल (Phonetic Play) रचती हैं। यह खेल बच्चों में भाषा के प्रति आनंद–बोध उत्पन्न करता है।

पाश्चात्य नर्सरी राइम्स (जैसे Twinkle Twinkle Little Star) की तरह ही, हिंदी राइम्स में भी तुकबंदी भाषिक संरचना को संगीतमय अनुभव में बदल देती है – परंतु हिंदी में यह अधिक लोकधर्मी और संवादात्मक होती है।

4.3. ताल (Tempo) और शारीरिक समन्वय :

हिंदी नर्सरी राइम्स में प्रयुक्त ताल प्रायः मध्यम होती है, जिससे बच्चों को हाथ–तालियाँ, उछलना, चलना जैसी क्रियाओं के साथ गाने का अवसर मिलता है।

"एक, दो, तीन,
टिप्पी टिप्पी ता।"

संख्याओं के साथ लयात्मक उच्चारण और ध्वन्यात्मक निरर्थकता ("टिप्पी टिप्पी ता") बच्चों में Motor

Coordination और ताल–समझ विकसित करती है।

यह विशेषता हिंदी राइम्स को केवल श्रवणात्मक नहीं, बल्कि शारीरिक–संगीतात्मक अनुभव बनाती है।

4.4. स्वर-सरलता और लोक-संगीतीय संकेत :

हिंदी नर्सरी राइम्स में जटिल रागात्मक संरचना नहीं होती, परंतु इनमें लोक–संगीत की सहज धुनें अंतर्निहित रहती हैं। ये धुनें सीमित स्वरों पर आधारित होती हैं, जिससे बच्चे आसानी से उन्हें दोहरा सकें।

"चंदा मामा दूर के,

पूए पकाए बूर के।"

इस गीत में लोरी–शैली की मृदु लय है, जो माँ–शिशु संबंध और भावनात्मक सुरक्षा का संकेत देती है। यह धुन लोकलोरियों से निकली हुई प्रतीत होती है, जहाँ संगीत का उद्देश्य सुलाना, शांत करना और स्नेह उत्पन्न करना होता है। वैश्विक संदर्भ में, जहाँ पाश्चात्य राइम्स अक्सर मेजर स्केल पर आधारित होती हैं, हिंदी राइम्स मोडल और लोक–आधारित स्वर–संरचना को प्राथमिकता देती हैं।

4.5. कथ्य, संगीत और सांस्कृतिक संकेत :

हिंदी नर्सरी राइम्स का संगीत उनके कथ्य से गहराई से जुड़ा होता है। पशु–पक्षी, परिवार, प्रकृति और दैनिक जीवन – ये सभी विषय संगीतात्मक लय के माध्यम से बच्चों के अनुभव का हिस्सा बनते हैं।

"नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए,

बाकी जो बचा था काले चोर ले गए।"

यह गीत कथा, हास्य और संगीत – तीनों का समन्वय है। इसकी धुन में नाटकीय उतार–चढ़ाव है, जो बच्चों की कल्पनाशीलता को सक्रिय करता है। यह विशेषता हिंदी नर्सरी राइम्स को केवल गीत नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आख्यान बना देती है।

4.6. संगीत और बाल-भावनात्मक विकास :

इन राइम्स की संगीतात्मकता बच्चों में आनंद, सुरक्षा और सहभागिता की भावना उत्पन्न करती है। सामूहिक गायन से सामाजिकता और व्यक्तिगत गायन से आत्म–अभिव्यक्ति को बल मिलता है।

हिंदी नर्सरी राइम्स की सरल धुनें बच्चे के अवचेतन में सकारात्मक भाव–संस्कार स्थापित करती हैं – जो आगे चलकर भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति रुचि का आधार बनते हैं।

5. तुलनात्मक वैश्विक परिप्रेक्ष्य :

वैश्विक स्तर पर नर्सरी राइम्स के कुछ सार्वभौमिक गुण 'लय, तुकबंदी और सारांशात्मक कथ्य' प्रत्येक परंपरा में मिलते हैं, परन्तु सांस्कृतिक–विषयक अंतर गहन हैं। उदाहरणतः– पाश्चात्य राइम्स में कल्पनात्मकता, काल्पनिक पात्र और शिकायती–हास्य का प्रचलन अधिक दिखता है (जैसे "Humpty Dumpty", "Jack and Jill"), जबकि भारतीय हिंदी राइम्स में पारिवारिक, पशु–पक्षी और नैतिक अनुभव (आचार, विनय) से संबंधित सन्देश अधिक निर्निहित होते हैं। इसके अतिरिक्त, औपनिवेशिक–विरासत और वैश्विक मीडिया के चलते अंग्रेजी राइम्स का भारत में प्रभुत्व बढ़ा है जिसका प्रभाव स्थानीय सांस्कृतिक सामग्री के शिक्षण–चयन पर देखा गया है। इस सन्दर्भ में कुछ अध्ययनों ने अंग्रेजी राइम्स के बहुल्यकरण को सांस्कृतिक असतर्कता (Cultural Hegemony) से जोड़ा है।

6. बाल-मनोविकास और शैक्षिक प्रभाव :

नर्सरी राइम्स का संगीतात्मक रूप बच्चों के भाषिक कौशल, स्मृति, और सामाजिक–भावनात्मक विकास को प्रभावित करता है। संगीतयुक्त दोहराव (Repetition with Melody) शब्दावली–अर्जन (Vocabulary Acquisition) और ध्वन्यात्मक जागरूकता को बढ़ाता है। शैक्षिक अध्ययनों में यह पाया गया है कि कक्षा–कार्य में राइम्स का समावेश सीखने की गति व संलग्नता दोनों बढ़ाता है। हिंदी संदर्भ में पारंपरिक लोकीराएँ (Loris) और बाल–गीत मातृत्व–बन्धन (Mother-infant Bonding) में सहायक होती हैं तथा भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती हैं। अतः नर्सरी राइम्स केवल सृजनात्मक टेक्स्ट नहीं, बल्कि मानसिक तथा शारीरिक विकास के सक्रिय साधन हैं।

निष्कर्ष :

हिंदी नर्सरी राइम्स, अपने संगीतात्मक तत्व 'लय, तुक, ताल तथा सरल धुनों' के माध्यम से न केवल भाषा तथा स्मृति विकास में योगदान देते हैं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और भावनात्मक जुड़ाव का माध्यम भी हैं। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इन गीतों की तुलना से स्पष्ट होता है कि जबकि कुछ सार्वभौमिक–संगीतात्मक तत्त्व साझा हैं, सांस्कृतिक सामग्री और उद्देश्य में विविधता है। डिजिटल रोमांच और वैश्वीकरण ने पहुँच बढ़ाई है परन्तु संगीतात्मक एवं सांस्कृतिक विशिष्टता की रक्षा के लिए समुचित नीतियाँ और शैक्षिक दृष्टिकोण आवश्यक हैं। कुल मिलाकर, हिंदी नर्सरी राइम्स का अध्ययन न केवल साहित्यिक–म्यूजिकल विश्लेषण की दृष्टि से फलदायी है बल्कि शैक्षिक–नीतिगत निर्णयों के लिए भी उपयोगी निर्देश प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :

- Oxford Bibliographies. "Nursery Rhymes".
- NCERT (National Council of Educational Research and Training). Baal Geet / Primary school rhyme collections (audio/print). (NCERT audiobooks, Baal Geet).
- Research article: "Learning through Rhymes in Early Childhood Education: A Cognitive Stylistics Approach" (ResearchGate, 2025).
- Study on cultural hegemony: "Western Cultural Hegemony and English Rhymes in Indian Schools" (ResearchGate, 2024).
- Additional background: Selected digital compilations of Hindi nursery rhymes (YouTube educational channels; comparative media examples).

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 64-66
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत विमर्श : संगीत और विज्ञान/गणित का अंतर्संबंध

तपन कुमार नाथ
बी.पी.ए. (तृतीय वर्ष)
नवीन शासकीय संगीत महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

सार :

संगीत केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह विज्ञान और गणित से गहराई से जुड़ा हुआ एक सुव्यवस्थित ज्ञानतंत्र है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक संगीत के स्वर, लय, ताल और संरचना को वैज्ञानिक एवं गणितीय सिद्धांतों के माध्यम से समझा गया है। यह शोधालेख वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत और विज्ञान/गणित के अंतर्संबंध का अध्ययन करता है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत परंपराओं में प्रयुक्त गणितीय अनुपात, ध्वनि–विज्ञान, तरंग सिद्धांत, फ्रिक्वेंसी, ताल–प्रणाली तथा आधुनिक तकनीकी शोधों का विश्लेषण किया गया है। शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि संगीत और विज्ञान/गणित एक–दूसरे के पूरक हैं तथा इनके समन्वय से संगीत शिक्षा, अनुसंधान और तकनीकी विकास को नई दिशा मिल सकती है।

मुख्य शब्द : संगीत, विज्ञान, गणित, ध्वनि–विज्ञान, स्वर, ताल, वैश्विक दृष्टिकोण।

1. परिचय :

संगीत मानव सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। विश्व की प्रत्येक संस्कृति में संगीत का कोई न कोई रूप विद्यमान है। यद्यपि संगीत को प्रायः भावनाओं और सौंदर्य से जोड़ा जाता है, किंतु इसके मूल में वैज्ञानिक और गणितीय सिद्धांत निहित हैं। ध्वनि की उत्पत्ति, उसकी ऊँचाई–नीचाई, तीव्रता, लय और ताल 'ये सभी वैज्ञानिक नियमों के अधीन होते हैं।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाश्चात्य संगीत में स्केल, हार्मोनी और रिद्म की गणितीय संरचना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वहीं भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वर–व्यवस्था, श्रुति सिद्धांत और ताल–प्रणाली गहन गणितीय सोच का परिणाम है। इस प्रकार संगीत और विज्ञानध्गणित का संबंध केवल सैद्धांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक भी है।

2. संगीत और विज्ञान का संबंध

2.1 ध्वनि-विज्ञान :

ध्वनि–विज्ञान भौतिकी की वह शाखा है जो ध्वनि तरंगों के उत्पादन, संचरण और प्रभाव का अध्ययन

करती है। संगीत की प्रत्येक ध्वनि कंपन से उत्पन्न होती है। जब कोई तार, वायु स्तंभ या झिल्ली कंपन करती है, तो ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं।

भारतीय संगीत में तानपुरा की ध्वनि एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ ओवरटोन और हार्मोनिक्स के सिद्धांत स्पष्ट रूप से अनुभव किए जा सकते हैं। पाश्चात्य संगीत में भी वायलिन, पियानो और फ्लूट जैसे वाद्ययंत्र ध्वनि–विज्ञान के नियमों पर आधारित हैं।

2.2 फ्रिक्वेंसी और स्वर :

प्रत्येक स्वर की अपनी एक निश्चित फ्रिक्वेंसी होती है। उदाहरण के लिए, पाश्चात्य संगीत में 'A' स्वर की मानक फ्रिक्वेंसी 440 Hz मानी जाती है। भारतीय संगीत में भी 'सा' की फ्रिक्वेंसी स्थिर आधार स्वर पर आधारित होती है, जो गायक की सुविधा के अनुसार तय की जाती है।

3. संगीत और गणित का संबंध

3.1 स्वर और गणितीय अनुपात :

प्राचीन यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस ने यह सिद्ध किया कि स्वर गणितीय अनुपातों पर आधारित होते हैं। तार की लंबाई के अनुपात बदलने पर स्वर बदल जाता है। भारतीय संगीत में भी षड्ज (सा) से पंचम (i) का अनुपात लगभग 3 : 2 माना जाता है।

3.2 ताल और मात्राएँ :

ताल पूर्णतः गणितीय संरचना है। भारतीय संगीत में ताल की मात्राएँ, विभाजन (विभाग), ताली और खालीकृसभी एक निश्चित गणना पर आधारित होते हैं।

जैसे –

- दादरा ताल : 6 मात्राएँ।
- कहरवा ताल : 8 मात्राएँ।
- तीनताल : 16 मात्राएँ।

यह गणितीय अनुशासन संगीत को संतुलन और सौंदर्य प्रदान करता है।

4. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संगीत, विज्ञान और गणित :

पाश्चात्य संगीत में टेम्पर्ड स्केल, हार्मोनी, और पॉलीरिद्म जैसी अवधारणाएँ गणितीय सूत्रों से विकसित हुई हैं। आधुनिक कंप्यूटर संगीत, डिजिटल ऑडियो प्रोसेसिंग, और म्यूजिक सॉफ्टवेयर विज्ञान एवं गणित के बिना संभव नहीं हैं।

भारतीय संगीत में भी आज डिजिटल तानपुरा, ताल ऐप्स, और स्वर विश्लेषण सॉफ्टवेयर का उपयोग बढ़ रहा है, जो संगीत शिक्षा को अधिक वैज्ञानिक और सुलभ बना रहे हैं।

5. कार्यप्रणाली :

इस शोधालेख में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति अपनाई गई है।

- **प्राथमिक स्रोत :** शास्त्रीय संगीत ग्रंथ, वैज्ञानिक लेख, संगीताचार्यों के विचार।
- **द्वितीयक स्रोत :** शोध–पत्रिकाएँ, ऑनलाइन जर्नल, संगीत एवं विज्ञान से संबंधित पुस्तकें।
- **तुलनात्मक अध्ययन :** भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत परंपराओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

6. उपसंहार :

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि –

1. संगीत विज्ञान और गणित से गहराई से जुड़ा हुआ है।
2. स्वर और ताल गणितीय नियमों पर आधारित हैं।
3. आधुनिक तकनीक ने संगीत को अधिक वैज्ञानिक और वैश्विक बनाया है।
4. संगीत शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से अधिगम अधिक प्रभावी हो सकता है।

आज के वैश्विक युग में संगीत केवल मंचीय कला नहीं रह गया है। यह थेरेपी, शिक्षा, तकनीक और अनुसंधान का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। संगीत चिकित्सा में ध्वनि तरंगों का वैज्ञानिक उपयोग इसका उदाहरण है। यदि संगीत शिक्षा में गणित और विज्ञान की समझ को समुचित रूप से जोड़ा जाए, तो विद्यार्थियों में तार्किक सोच और रचनात्मकता दोनों का विकास संभव है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संगीत, विज्ञान और गणित परस्पर पूरक हैं। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इनका समन्वय न केवल संगीत की समझ को गहरा करता है, बल्कि शिक्षा और अनुसंधान के नए द्वार भी खोलता है। भविष्य में संगीत का विकास वैज्ञानिक और गणितीय आधारों पर और अधिक सुदृढ़ होगा।

7. संदर्भ :

1. शर्मा, पं. ओंकारनाथ : भारतीय संगीत का वैज्ञानिक अध्ययन।
2. दास, लक्ष्मीनारायण : संगीत और ध्वनि विज्ञान।
3. Pythagoras – On Music and Mathematics.
4. Rossing, T. D. – The Science of Sound.
5. Jairazbhoy, Nazir Ali – The Ragas of North Indian Music.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 67-70
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

नृत्य और संगीत का अविभाज्य संबंध

डॉ. संतोष कुमार पाठक, एसोसिएट प्रोफेसर
वेंकट चिन्ना राव, शोधार्थी
मंच कला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

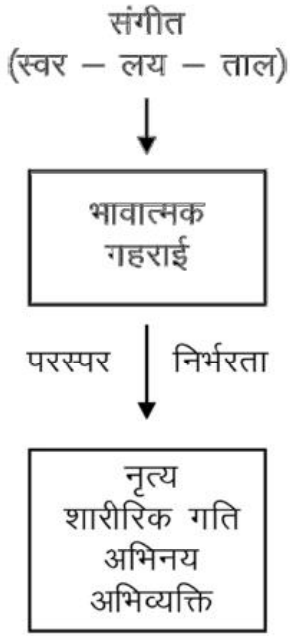
सारांश :

भारतीय कला परंपरा में नृत्य और संगीत का संबंध अत्यंत घनिष्ठ एवं अविभाज्य माना जाता है। नृत्य जहाँ शारीरिक गतियों, भाव–भंगिमाओं और अभिनय के माध्यम से सौंदर्य एवं भावों की अभिव्यक्ति करता है, वहीं संगीत उसे लय, स्वर और ताल के माध्यम से भावनात्मक गहराई एवं आंतरिक संवेदन प्रदान करता है।

प्रस्तुत शोधपत्र नृत्य और संगीत के पारस्परिक संबंध, उनके ऐतिहासिक विकास, सैद्धांतिक आधार तथा व्यावहारिक प्रयोगों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस शोध में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि संगीत के बिना नृत्य अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता तथा नृत्य के बिना संगीत की दृश्यात्मक अभिव्यक्ति सीमित रह जाती है।

अतः यह अध्ययन नृत्य और संगीत को एक समन्वित एवं परस्पर पूरक कला के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द : नृत्य संगीत, ताल, लय, रस, अभिनय नृत्य भारतीय शास्त्रीय कला।



भूमिका :

यो नृत्यति प्रहष्टात्मा भावैरत्यन्वभक्तितः।
सं निर्दहति पापनि जन्मान्तर शतैरपिः।।

द्वारिका माहात्म्य में लिखा हैं कि जो प्रसन्न चित्त श्रद्धा और भक्ति पूर्वक, भावों सहित नृत्य करते हैं वे जन्म जन्मान्तरों के पापों से से मुक्त हो जाते हैं।[1]

भारतीय संस्कृति में कला को साधना और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम माना गया हैं। नृत्य और संगीत, दोनों ही कलाएं मानव की सहान अभिव्यक्ति से उत्पन्न हुई हैं। अभिव्यक्तियों एक रसमय प्रदर्शन हैं यह एक सार्वभौमिक कला हैं, जिसका जन्म मानव जीवन के साथ हुआ। बालक जन्म लेते ही रोता अपने हाथ पैर मारकर अपने भावाभिव्यक्ति करता हैं कि वह भूखा हैं। इन्हीं आगिंक क्रियाओं से नृत्य की उत्पत्ति हुई हैं।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नृत्य, संगीत और नाट्य को एक समग्र कला के रूप में स्वीकार किया गया हैं। इस संदर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि नृत्य और संगीत का संबंध केवल सहायक नहीं, अपितु सह–अस्तित्व का हैं।

नृत्य कुला : नृत्य को शरीर की लयबद्ध गतियों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति की कला कहा जा सकता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार नृत्य के तीन प्रमुख अंग 'नृत, नृत्त और नृत्य' माने गए हैं, जो नृत्य की संरचना और अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं।

नृत में सामान्य गतियाँ निहित होती हैं, नृत्त में शुद्ध लय, ताल और अंग संचालन का प्रदर्शन प्रमुख होता है, जबकि नृत्य में भाव, अभिनय और कथा का समावेश होता है। नृत्य के इस रूप में नर्तक हस्तमुद्राओं, मुखाभिनय और विविध भावों के माध्यम से अर्थ तथा भावों की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार इन तीनों अंगों का समन्वय ही नृत्य प्रस्तुति को पूर्णता प्रदान करता है।

इन सभी रूपों में संगीत की भूमिका अनिवार्य है, क्योंकि ताल और लय के बिना नृत्य की संरचना और उसकी प्रभावपूर्ण प्रस्तुति संभव नहीं है। अतः नृत्य और संगीत का संबंध परस्पर पूरक और अभिन्न है।

संगीत कला : संगीत स्वर, ताल और लय का समन्वित कला रूप है, जो ध्वनि के माध्यम से भावों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करता है। भारतीय परंपरा में संगीत को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम माना गया है।

भारतीय संगीत को मुख्यतः तीन भागों गायन, वादन और नृत्य में विभाजित किया गया है।

- गायन में स्वर और शब्द के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति होती है।
- वादन में विभिन्न वाद्य यंत्रों द्वारा लय और ध्वनि की संरचना प्रस्तुत की जाती है।
- नृत्य में संगीत की लय और ताल को शारीरिक गतियों तथा अभिनय के माध्यम से दृश्य रूप प्रदान किया जाता है।

इस प्रकार संगीत के ये तीनों अंग परस्पर जुड़े हुए हैं और एक–दूसरे की अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं। विशेषतः नृत्य में संगीत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि स्वर, लय और ताल के बिना नृत्य की संरचना, सौंदर्य और प्रभावशीलता अधूरी रह जाती है।

वैदिक युग में नृत्य व संगीत : भारतीय परम्परानुसार वेद अपौरुषेय हैं। उनका प्रकटन मानव जाति के

जन्म के साथ हुआ हैं। विद्वानों के मतानुसार और भारतीय पुरातत्व विभाग की खुदाई के द्वारा प्राप्त मूर्तियाँ तथा शिलालेखों के अनुसार यह निश्चित एवं प्रमाणित हो चुका था कि भारतीय संगीत का जन्म ईसा से 1000 वर्ष पूर्व हो चुका था। भारतीय संगीत की नीव द्रविड़ों के संगीत पर आधारित हैं। द्रविड़ों को संगीत के वैज्ञानिक रूप का ज्ञान था। नृत्य का स्पष्ट उल्लेख वेदों में स्थान–स्थान पर का स्पष्ट प्राप्त होता हैं।[2]

रामायण काल में नृत्य एवं संगीत :

इस युग में समाज के अत्यंत उच्चवर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक के लोग नृत्यादि कलाओं में न केवल रुचि रखते थे, अपितु उनमें नैपुण्यता प्राप्त करने का भी प्रयास करते रामायण काल में जब राजा ही संगीत के मर्मज्ञ थे तो फिर उनकी प्रजा क्यों न होगी । मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने के लिए जिन विद्या, कलाओं की अनिवार्यतः शिक्षादी जाती थी उनमें संगीत व नृत्य भी था। स्वयं श्रीराम चन्द्र संगीत, वाद्य चित्र आदि कलाओं के ज्ञाता थे। लंकेश्वर रावण भी नृत्य–संगीत के साथ शिवजी की पूजा करते थे।[3]



रामायण काल में कथ्य, गायन और वाद्य का समन्वय -- लव-कुश का दिव्य गान

चित्र - 1[4]

जैसे कि हमने पढ़ा वैदिक एवं रामायण काल से स्पष्ट होता हैं कि नृत्य का संगीत से गहन संबंध रहा हैं। महाभारत की कथा अनुसार देवराज इन्द्र की सभा में गीत, वाद्य और नृत्य से अर्जुन का स्वागत किया गया था, जिसमें गन्धर्वा ने तुम्बरु, मृदंग एवं वीणा जैसे वाद्यों को बजाकर गान किया था तथा धृताची, मेनका, रम्भा, ऊर्वशी आदि अप्सराओं ने भावपूर्ण नृत्य का प्रदर्शन किया था। नृत्य के साथ प्रायः गीत वाद्य का सहयोग अवश्य रहता था तथा लास्य इत्यादि नृत्यों में भाव प्रदर्शन का महत्वपूर्ण स्थान था। गायन वादन तथा पाठ्य के समान नृत्य के साथ ताल देने की प्रणाली थी। ताल के अंतर्गत पाणी ताल, शम्या, सम आदि विभिन्न अंगों का महाभारत में उल्लेख हुआ हैं –

पाणिताल सतालैश्व शम्यातालैः समैस्तथा।
संप्रहृटः प्रनृत्यद्भिः सर्वस्त्र निर्षव्यते।।

अर्थात् शिव की आराधना में नृत्य करने वाले नर्तकों के द्वारा ताल के विभिन्न अंगों का समुचित निर्वाह किया जाता था। जैसे हाथों से दिए जाने वाले ताल, शम्या (लकड़ी/छड़ी) से दिए जाने वाले ताल और अन्य सभी ताल जब समान लय में होते हैं, तब प्रसन्न होकर नृत्य करने वाले कलाकारों द्वारा वहाँ सम्पूर्ण प्रस्तुति (नृत्य) पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाती हैं।

निष्कर्ष :

नृत्य और संगीत का संबंध भारतीय कला परंपरा में अविभाज्य, शाश्वत तथा परस्पर आश्रित माना गया है। नृत्य, संगीत के बिना अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता और संगीत भी नृत्य के दृश्यात्मक रूप के बिना अपनी अभिव्यक्तिगत सीमा में बंधा रहता है। संगीत स्वर, लय और ताल के माध्यम से नृत्य को भावात्मक गहराई और आंतरिक चेतना प्रदान करता है, जबकि नृत्य शारीरिक गतियों, मुद्राओं और अभिनय के माध्यम से संगीत को दृश्य रूप में मूर्त कर देता है। इस प्रकार दोनों कलाएँ एक–दूसरे की अभिव्यक्ति को विस्तार प्रदान करती हैं।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में यह संबंध केवल मंचीय प्रस्तुति तक सीमित नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक साधना, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक उत्सव और सांस्कृतिक जीवन की निरंतरता में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नाट्यशास्त्र सहित अनेक प्राचीन ग्रंथों में नृत्य, गीत और वाद्य को एक समन्वित कला के रूप में वर्णित किया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि भारतीय दृष्टिकोण में कला का स्वरूप सदैव समग्र और एकीकृत रहा है।

अतः यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया जा सकता है कि नृत्य और संगीत को पृथक इकाइयों के रूप में नहीं, बल्कि एक समन्वित एवं परस्पर पूरक कला के रूप में समझना ही इस शोध का मुख्य प्रतिपाद्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण. (2001). भरतनाट्यम भाग–1. उत्तर प्रदेश : संगीत कार्यालय, पृ. स.–2
2. दाधीच, पुरु (1998), कथक नृत्य शिक्षा. मध्यप्रदेश : बिन्दु प्रकाशन, पृ. स.–2
3. दाधीच, पुरु (1998): कथक नृत्य शिक्षा. मध्यप्रदेश : बिन्दु प्रकाशन, पृ.स. –4
4. https://www.linkedin.com/posts/vikrampandit_ramayana-valmiki-activity-7312666167767179265-NrZx

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 71-75
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

Music and Religion: A Global Perspective on Sacred Sound and Spiritual Experience

Sri. Md. Aasif Hussain

Artistic Director Kala Sadhana and Faculty Department of Bharatanatyam Param for Music and Arts, Abu Dhabi UAE

Abstract :

Music and religion share a profound and ancient relationship rooted in humanity's earliest attempts to understand, experience, and communicate with the sacred. Across civilizations, sacred sound has functioned not merely as an artistic expression but as a spiritual force capable of invoking divine presence, structuring ritual practices, and transforming human consciousness. This paper examines the role of music within religious traditions from a global and comparative perspective, with particular emphasis on Indian philosophical thought and cross-cultural practices. Drawing examples from Hinduism, Buddhism, Christianity, Islam, Judaism, Sikhism, and Indigenous spiritual systems, the study explores how sacred sound mediates spiritual experience, reinforces communal identity, and transmits religious knowledge. Adopting an interdisciplinary approach that integrates musicology, religious studies, anthropology, and aesthetics, the paper argues that music operates as a universal spiritual language—transcending linguistic boundaries while remaining culturally specific. The study concludes that sacred sound is not merely reflective of religious ideology but is an active agent in generating devotion, transcendence, and spiritual realization, making music a foundational element of global religious life.

Keywords :

Sacred Sound, Music and Religion, Spiritual Experience, Nada Brahma, Ritual, Global Traditions

1. Introduction :

Music and religion are among the most enduring and universal dimensions of human civilization. Long before the development of written language, sound and rhythm were employed in rituals to

invoke divine forces, communicate with unseen realms, and establish sacred environments. Archaeological and anthropological evidence suggests that early religious practices relied heavily on chanting, drumming, and vocalization, indicating that music was one of humanity's earliest spiritual tools.

Religion seeks to transcend the material world and articulate experiences that lie beyond rational comprehension. Music, with its intangible yet emotionally powerful nature, becomes an ideal medium for such transcendence. Unlike spoken language, music communicates directly with human emotions and consciousness, enabling individuals to experience devotion, awe, surrender, and mystical union. As a result, sacred music has remained central to religious traditions across cultures.

In the Indian context, the relationship between music and spirituality is especially profound. Concepts such as Nada Brahma, which views sound as divine reality, position music not merely as an art form but as a metaphysical principle. Similarly, other world religions attribute sacred significance to sound through scriptural recitation, liturgical chant, and ritual music.

This paper examines music and religion from a global perspective, focusing on how sacred sound shapes spiritual experience and religious consciousness across diverse traditions.

2. Sacred Sound: Conceptual and Theoretical Perspectives :

Sacred sound refers to sonic expressions that are ritually sanctioned and symbolically charged within religious traditions. Unlike secular music, which is primarily evaluated on aesthetic or entertainment value, sacred sound is defined by its spiritual intention and transformative purpose. Its effectiveness is measured not by artistic virtuosity alone but by its capacity to invoke divine presence, purify consciousness, and facilitate spiritual communion.

Mircea Eliade's concept of hierophany helps explain how sacred sound transforms ordinary space into sacred space. For instance, the ringing of temple bells in Hindu worship or church bells in Christianity marks a transition from profane time to sacred time. Ethnomusicological studies further emphasize that sacred music must be understood within its ritual context. A Vedic chant or Qur'anic recitation loses much of its meaning when detached from its ceremonial function.

Sacred sound shapes spiritual experience by influencing physiological and psychological processes. Chanting regulates breathing, rhythmic repetition synchronizes bodily movement, and melodic contours evoke emotional states such as devotion, awe, or surrender. Silence also functions as sacred sound. In Zen Buddhism and Christian monastic traditions, silence is not the absence of sound but a spiritual condition that allows divine awareness to emerge. Thus, sacred sound operates

as a holistic spiritual mechanism integrating body, mind, and belief.

3. Sacred Sound in Indian Religious and Philosophical Traditions

3.1 Hinduism : Nada Brahma, Mantra, and Musical Sadhana :

Hindu philosophy offers one of the most sophisticated frameworks for understanding sound as sacred reality. The concept of Nada Brahma—"the universe is sound"—suggests that vibration is the fundamental principle underlying creation. According to this worldview, spiritual realization is achieved by aligning individual consciousness with cosmic sound.

The sacred syllable Om (AUM) exemplifies this belief. It is not merely a symbolic utterance but a vibrational formula believed to activate spiritual awareness. Chanting Om in yogic and meditative practices is said to harmonize the practitioner's inner rhythm with universal vibration.

The Samaveda institutionalized sacred music by codifying chants meant to be sung during ritual sacrifice. The precision of pitch (svara), rhythm (chandas), and articulation is considered crucial, as even minor deviations are believed to alter the mantra's spiritual potency. This reflects the belief that sound itself—not meaning alone—possesses divine power.

Indian classical music inherited this sacred orientation. Ragas such as Bhairav (associated with dawn and spiritual seriousness) or Yaman (linked with devotion and serenity) demonstrate how musical structure aligns with temporal and emotional spirituality. Devotional practices like bhajans and kirtans transform musical performance into collective worship, where emotional surrender (bhakti) becomes a pathway to divine connection.

3.2 Buddhism : Chant, Silence, and Meditative Sound (Expanded) :

In Buddhism, sacred sound functions primarily as a meditative and disciplinary tool. Chanting is not intended to express emotion but to cultivate awareness and compassion. The repetition of mantras such as Om Mani Padme Hum helps regulate breath and stabilize the mind, reducing attachment to ego and desire.

Tibetan Buddhist rituals employ a carefully structured sonic environment. Instruments such as the dorje bell symbolize wisdom, while drums represent method and compassion. Overtone chanting produces complex sonic textures believed to resonate with subtle levels of consciousness. These sounds assist practitioners in visualization practices and ritual meditation.

Equally significant is the role of silence. In Zen Buddhism, silent sitting (zazen) emphasizes direct experience beyond conceptual sound. Silence here becomes a spiritual soundscape, allowing insight (prajña) to arise naturally. Thus, Buddhism demonstrates a balance between sound and silence as complementary paths to enlightenment.

4. Sacred Music in Abrahamic Religious Traditions :

4.1 Christianity : Chant, Hymns, and Musical Worship (Expanded) :

Christian sacred music evolved as an extension of liturgical prayer. Gregorian chant, with its flowing melodic lines and absence of strong rhythm, was designed to enhance scriptural meditation rather than musical display. The chant's modal structure promotes calmness and introspection, aligning the worshipper's mind with prayerful devotion.

The Protestant Reformation expanded the role of congregational singing through hymns. Hymns enabled theological ideas to be memorized and internalized by the community. Composers such as Johann Sebastian Bach viewed music as an offering to God, famously inscribing his compositions with the phrase Soli Deo Gloria (To God alone be the glory).

Thus, Christian sacred music functions as theology in sound—educating, uniting, and spiritually elevating believers.

4.2 Islam : Recitation, Adhan, and Sufi Musical Mysticism (Expanded) :

Islamic spirituality is deeply rooted in sacred sound, particularly through the recitation of the Qur'an. Qur'anic recitation follows precise melodic frameworks (maqamat) that enhance emotional and spiritual receptivity while maintaining reverence for divine revelation. The beauty of recitation is believed to reflect the perfection of God's word.

The adhan, recited five times daily, sanctifies time and space, reminding the faithful of divine presence in everyday life. In contrast to orthodox reservations about music, Sufi traditions embrace musical practices such as Qawwali and Sama. These musical forms aim to inducewajd (spiritual ecstasy), leading to fana—the dissolution of the ego in divine love. Here, music becomes a direct experiential path to God.

4.3 Judaism and Sikhism : Sacred Memory and Musical Discipline (Expanded) :

Jewish sacred music emphasizes continuity and remembrance. Torah cantillation preserves scripture through melodic formulas that guide pronunciation and interpretation. These chants ensure that sacred texts remain living oral traditions rather than static written documents.

Sikhism integrates music directly into scripture. The Guru Granth Sahib is organized according to ragas, reinforcing disciplined musical worship. Gurmat Sangeet serves both devotional and educational purposes, conveying ethical teachings through sound. Music thus becomes a means of spiritual instruction and moral refinement.

5. Indigenous and Shamanic Musical Traditions (Expanded) :

Indigenous spiritual traditions demonstrate that music predates written religion. In African, Native American, and Eurasian cultures, drumming and chanting are central to rituals invoking ancestral spirits and natural forces. Repetitive rhythms induce trance states that allow shamans to communicate

with the spirit world and perform healing rituals.

In many cultures, religious specialists are identified as "singers," highlighting music's role as spiritual authority. These traditions emphasize participation, embodiment, and community, reinforcing music as a collective spiritual experience rather than individual performance.

6. Music as a Medium of Spiritual and Communal Experience (Expanded) :

Music evokes emotional states that transcend language, making it particularly effective in religious expression. Devotional singing often communicates faith more powerfully than spoken sermons. As scholars note, believers tend to remember theology through song more vividly than through doctrinal instruction.

Festivals, pilgrimages, and rituals rely on music to create shared emotional environments. Whether in temple processions, church services, or Sufi gatherings, music transforms religious belief into lived experience. Thus, music serves as a universal spiritual language capable of crossing cultural boundaries while preserving religious identity.

7. Globalization and Contemporary Transformations :

Globalization and digital media have transformed the circulation of sacred music. Devotional forms such as Indian bhajans, Gregorian chant, and Sufi qawwali now reach global audiences through recordings and online platforms. While concerns regarding commercialization persist, these developments also promote preservation, interfaith dialogue, and renewed spiritual engagement.

8. Conclusion :

Music and religion share a deep historical relationship that transcends culture, language, and time. Across religious traditions, sacred sound functions as a bridge between the human and the divine, transforming belief into lived spiritual experience. While musical forms and theological interpretations differ globally, the essential purpose of sacred music remains constant: to facilitate devotion, transcendence, and inner transformation.

This study affirms that music is not merely an accompaniment to religion but a fundamental spiritual discipline. As both a reflection and generator of spiritual consciousness, sacred sound remains central to religious life and scholarly inquiry.

References :

1. Berendt, J. E. (1991). The World Is Sound: Nada Brahma. Destiny Books.
2. Eliade, M. (1959). The Sacred and the Profane. Harcourt Brace.
3. Ghosh, D. (2010). Indian Music and Spiritual Traditions. Munshiram Manoharlal.
4. Hood, M. (1982). The Ethnomusicologist. Kent State University Press.
5. Rowell, L. (1992). Music and Musical Thought in Early India. University of Chicago Press.
6. Turner, V. (1969). The Ritual Process. Aldine Publishing.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 76-80
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18803867

Laya and Rhythm : The Dialogue between Nattuvangam and Movement in Bharatanatyam

Rajendra Kumar
Assistant Professor Bharatanatyam,
Naveen Shaskiya Sangeet Mahavidyalaya, Durg.

Abstract :

Bharatanatyam, one of India's oldest classical dance traditions, is deeply rooted in rhythmic awareness. At the centre of this rhythmic framework lies laya—the flow of time that governs both musical structure and bodily movement. Among the musical elements that support Bharatanatyam performance, nattuvangam holds a unique and authoritative role. Far from serving as mere accompaniment, it actively engages with the dancer's movements, shaping rhythm, structure, and expression. This paper explores the dialogic relationship between nattuvangam and movement in Bharatanatyam and argues that rhythm functions as an embodied and generative force. Drawing upon classical aesthetic theory, performance practice, and pedagogical traditions, the study examines how nattuvangam influences kinetic precision, tala awareness, expressive timing, and overall aesthetic experience. The findings underline the vital role of nattuvangam in cultivating embodied laya and in sustaining the rhythmic integrity of Bharatanatyam in both traditional and contemporary contexts.

Keywords : Tala, Movement, South India, Music.

Introduction :

In Indian classical performing arts, rhythm is understood not simply as a method of measuring time, but as a living principle that organises sound, movement, and emotional expression. Bharatanatyam, a classical dance form that emerged from South India's temple and court traditions, reflects this holistic understanding of rhythm through the seamless integration of music and movement. Rather than functioning as an external support, rhythm in Bharatanatyam is experienced as something deeply embodied—something that is heard, seen, and felt simultaneously.

Among the various musical components that accompany Bharatanatyam—vocal music, melodic

instruments, percussion, and cymbals—nattuvangam occupies a central and distinctive place. Traditionally performed by the nattuvanar, nattuvangam employs vocalised rhythmic syllables (solkattu) along with cymbal articulation to guide, accentuate, and converse with the dancer's movements. Through this interaction, rhythmic sound is transformed into visible kinetic form. The present study seeks to explore this dialogue between nattuvangam and movement and to understand its significance in shaping the rhythmic, pedagogical, and aesthetic dimensions of Bharatanatyam.

Conceptual Framework: Laya in Indian Aesthetic Thought :

The concept of laya occupies a foundational position in Indian music and dance theory. Derived from Sanskrit, the term signifies dissolution, continuity, and rhythmic absorption, suggesting an uninterrupted flow of time. Classical texts such as the Na?yasastra emphasise laya as essential for maintaining harmony between movement (a?gika), music (gita), and rhythm (tala). Without laya, these elements cannot function as a unified aesthetic whole.

In Bharatanatyam, laya operates through three principal tempos—vilambita (slow), madhyama (medium), and druta (fast). These tempos are not merely differences in speed; each carries distinct expressive and aesthetic qualities. Slow laya allows space for subtle abhinaya and internalised emotional expression, while faster tempos demand heightened rhythmic alertness and technical control. A dancer's mastery of laya is reflected in the ability to move effortlessly across these tempos while maintaining clarity, balance, and expressive coherence.

Nattuvangam : Structure, History, and Function :

Nattuvangam refers to the rhythmic system of vocal syllables and cymbal playing that accompanies Bharatanatyam performances. Historically, it developed within temple and court traditions closely associated with the devadasi system, where the nattuvanar played a crucial role in both training and performance. Traditionally, the nattuvanar functioned not only as a rhythmic accompanist but also as a teacher, conductor, and custodian of the dance tradition.

The solkattu used in nattuvangam consist of codified rhythmic units aligned with specific adavus, jatis, and teermanams. These syllables act as sonic representations of movement, enabling dancers to internalise rhythm through bodily experience. Unlike instrumental percussion, nattuvangam maintains a direct linguistic and pedagogical connection with movement, reinforcing rhythmic awareness from the earliest stages of training. This close relationship between sound and action forms the backbone of Bharatanatyam's rhythmic discipline.

Sound–Movement Dialogue in Bharatanatyam :

The relationship between nattuvangam and movement in Bharatanatyam operates as a dialogue rather than a rigid command structure. Rhythmic utterances may anticipate, accompany, or respond

to the dancer's movements, creating a continuous exchange between sound and action.

In n?tta passages, this dialogue is particularly explicit. Footwork aligns precisely with solkattu syllables, making rhythm visually perceptible through movement. The dancer's torso, arms, and spatial patterns further emphasise rhythmic accents, allowing the audience to experience rhythm kinetically. In abhinaya-oriented sections, the dialogue becomes more subtle. Although overt rhythmic markers recede, the timing of gestures, pauses, and transitions remains firmly anchored in laya. This demonstrates that rhythm continues to operate beneath expressive movement, shaping performance even in moments of apparent stillness.

Methodology :

The present study adopts a qualitative and analytical approach, drawing upon classical textual sources on Indian music and dance aesthetics, observations of Bharatanatyam training and performance practices, and pedagogical analysis of nattuvangam-based instruction. Rather than relying on empirical experimentation, the research employs interpretive analysis of established theoretical frameworks and performance conventions to identify recurring rhythmic mechanisms and to understand their functional implications within Bharatanatyam practice.

Results and Discussion :

The findings of this study clearly demonstrate that nattuvangam functions as an active rhythmic force that shapes and generates movement in Bharatanatyam, rather than serving as a passive musical background. The solkattu syllables articulated by the nattuvanar correspond directly to bodily actions such as foot strikes, directional changes, and rhythmic pauses. For example, in adavu patterns like tatta mettus or tei tattai tam, each syllable is matched with a specific kinetic action, enabling dancers to execute movement with precision and clarity. Through this close alignment, rhythm becomes visible, and nattuvangam emerges as a co-creator of movement meaning.

Further observations indicate that dancers who train extensively with live nattuvangam develop a deeper embodiment of laya. These dancers maintain rhythmic stability across tempo changes, moving confidently from vilambita to druta laya without losing compositional coherence. Even during moments of expressive stillness—such as sustained poses or emotionally charged pauses in abhinaya—the dancer's internal rhythmic awareness remains strong. This suggests that nattuvangam supports an internal experience of rhythm, allowing dancers to inhabit laya as a continuous flow rather than merely responding to external cues.

The study also highlights the role of nattuvangam in strengthening tala awareness and kinetic precision. Bharatanatyam compositions unfold within cyclical tala structures, and accurate alignment with these cycles is essential for effective performance. Through clear articulation of rhythmic

subdivisions, nattuvangam enables dancers to land precisely on key points such as sam and arudi, especially in complex sequences like teermanams and korvais. Dancers trained with nattuvangam consistently display confidence and rhythmic clarity, confirming its role in cultivating rhythmic intelligence rather than mechanical beat-following.

From a pedagogical standpoint, early exposure to nattuvangam proves vital in developing rhythmic autonomy and coordination. When adavus are taught alongside solkattu, auditory and kinesthetic learning reinforce one another. This integrated method strengthens memory, coordination, and rhythmic independence. Over time, dancers become capable of sustaining rhythm without constant external support. The guru–si?ya parampara further reinforces this process through repetition, observation, and embodied demonstration, ensuring that rhythmic knowledge is transmitted as lived experience.

The findings further reveal that rhythm continues to shape expressive movement in abhinaya-dominant sections. Although rhythmic articulation may appear less explicit, laya governs the timing of gestures, glances, and emotional transitions. A measured pause, a sustained look, or the gradual unfolding of a hand gesture is always rhythmically informed. This confirms that rasa realisation in Bharatanatyam is grounded in rhythmic discipline, and that emotional expression is inseparable from laya.

Finally, the study draws attention to contemporary challenges arising from increased dependence on recorded music. While recordings offer convenience, they reduce opportunities for spontaneous rhythmic dialogue between dancer and nattuvanar. Live nattuvangam allows for flexibility, adaptive timing, and responsive interaction, all of which contribute to the vitality of performance. The absence of this real-time exchange may lead to rigidity and diminished rhythmic sensitivity, underscoring the importance of preserving live nattuvangam practice in contemporary Bharatanatyam.

Conclusion :

This study demonstrates that the dialogue between nattuvangam and movement lies at the very heart of Bharatanatyam's rhythmic and aesthetic identity. Laya functions as an embodied principle through which sound and movement merge, transforming rhythm into a visible and experiential force. Nattuvangam emerges not as a subsidiary accompaniment but as the rhythmic intelligence that guides structure, pedagogy, and expression. Preserving this dialogic relationship is essential for maintaining the depth, authenticity, and philosophical coherence of Bharatanatyam as the form continues to evolve in modern performance contexts.

References :

1. Brown, K. (2007). Carnatic rhythms: Tala and the art of percussion. Oxford University Press.

2. Coomaraswamy, A. K. (1957). The dance of Siva: Essays on Indian art and culture. Dover Publications.
3. Meduri, A. (2004). Bharatanatyam as a global dance: Some issues in research, teaching, and practice. Dance Research Journal, 36(2), 11–29.
4. Na?yasastra of Bharata Muni. (1967). Trans. M. Ghosh. Asiatic Society.
5. O'Shea, J. (2007). At home in the world: Bharata Natyam on the global stage. Wesleyan University Press.
6. Soneji, D. (2012). Unfinished gestures: Devadasis, memory, and modernity in South India. University of Chicago Press.
7. Vatsyayan, K. (1996). Indian classical dance. Publications Division, Government of India.
8. Viswanathan, T., & Allen, M. (2004). Music in South India: The Karnatak concert tradition and beyond. Oxford University Press.

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor : 6.521

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037